लाभ-हानि की तोल-मोल

बड़े बांध और लिंग : एक रिपोर्ट

लयला मेहता
बिना श्रिनिवासन

-GEN : 9

बम्बई
दिसम्बर 2000

विषय सूची

अध्ययन केन्द्र बड़वानी

बडे बांध का विवाद : लिंग विचार कहाँ ? १

लिंग क्या है ? ५

बडे बांध के सामाजिक असर : लिंग के दष्टिकोण से ९

विस्थापन, पुनर्वास ओर लिंग १५

आदेशित क्षेत्र २७

निष्कर्ष ४०

बोक्स

1 : बुरकीना फासो में लिंग ओर चावल धाटी विकास २९

2 : गाम्बीयामें सिंचाई परियोजनाएँ ३६

3 : गुजरात में बाँधो का राजकीय अर्थशास्त्र ३८

अभिस्वीकृति

यह रिपोर्ट मूलतः वर्ल्ड कमिशन ओन डेम्स (World Commission on Dams - WCD) के लिए लिखा गया था। इस पेपर की पूर्व तैयारी के समय हमने ये पाया कि लिंग ओर बांध को जोडती हुई माहिती बेहद कम मात्रा में उपलब्ध है। माहिती इकट्ठा करने के लिए हमनें सक्रिय कार्यकर्ता, शिक्षकवर्ग ओर अन्वेषकों के साथ इ-मेइल पर परामर्श शुरु किया।

हमारे शुरुआती इ-मेइल जांच को प्रतिभाव देनेवाले सभी व्यक्तियों के हम आभारी हैं। खास करके बिल आदम्स, लिआन ग्रीक, सुप्रिया सत्यनारायण, हिमांशु ठक्कर, पेट्रीक मेक्कली, एलेक्स विहकीस, निक हिल्डयार्ड के हम आभारी है और शुरुआत के मसौदे के लिए महत्त्व की टिप्पणी देने के योगदान के लिए हम WCD के मजूजू निस्से ओर एस. परशुरामन के आभारी है। इसके उपरांत, इन्स्टीटयुट ओफ डेवलेपमेन्ट स्टडीज (IDS), ससेक्स का इस कार्य को पूर्ण करने में निर्णायक संस्थाकीय सहयोग रहा था।

इस पुस्तिका को प्रकाशित करने में आर्थिक सहयोग की पूर्ति ESCOR (DFID), UK द्वारा की गई है। 1999 में WCD के लिए लिखी गए एक पेपर का यह रिपोर्ट रुपान्तरण हैं।

यह पुस्तिका अंग्रेजी ओर हिन्दी दोनों भाषाओं में तैयार की गई है। हमें आशा है कि यह पुस्तिका लिंग ओर बांध के लिए अति आवश्यक चर्चा के प्रारंभ के लिए सहायक रहेंगी।

लेखक :

लयला महेता इन्स्टीटयूट ओफ डेवलपमेन्ट स्टडीज, युनिवर्सिटी ओफ ससेक्स में एक रिसर्च फेलो है। जल अप्राप्यता, लिंग और बडे बांध के कारण विस्थापन और पानी की विश्वव्यापी राजनीति उनके रिसर्च के मुख्य विषय है।

बीना श्रीनिवासन एक स्वतंत्र रिसर्चर है और भारत में महिला आंदोलन की सक्रिय कार्यकर्ता है। पिछले पाँच सालों से वह 'शहरी और ग्राम्य विस्थापन का स्त्रियों पर प्रभाव' सबंधित विषय पर कार्य कर रही हैं । हाल में विकास परियोजना के कारण विस्थापित महिलाओं पर असर को लेके कार्यरत है।

बडे बांध के विवाद में लिंग विचार कहाँ है ?

बडे बांधो का इतिहास विकास के इतिहास के समांतर रहा है। 1950 और 60 के दशक में आधुनिकरण अपनी चरम सीमा छू रहा था ओर विकास का झुकाव परियोजना-केन्द्रीत था। विकास को प्रगति का एक रेखीय मार्ग माना जाता था। बांधे गए बडे बांध विकास ओर आधुनिक परियोजना के प्रतीक थे; और विकास-वृद्धि के केन्द्र भी थे। सहस्राब्दि के बदलाव पर विकास ज्यादा लोकाभिमुख, अधिकार-आधारित होने के लिए संघर्षशील है; और ज्यादातर एक एसी प्रक्रिया के रूप में देखा जाने लगा हैं जो साम्यिक, न्यायसंगत हो तथा मौजूद विकल्पो में बढावा करती हो। इस संदर्भ में, बडे बांध अपने सामाजिक परिणामों के कारण विवाद और समस्याओं से घिरें हैं।

बडे बांध के सामाजिक प्रभाव, जैसे कि अनैच्छिक पुनर्वास और विस्थापन के बारे में विस्तृत दस्तावेजीकरण हुआ हैं (cf.Cernea,1977, Scudder, 1995, Cernea & Guggenheim, 1993)। परन्तु पूरी नदी-घाटी पर बसे विभन्न लोगों के जीवन और जीवनसंसाधन पर बडे बाधों के प्रयत्क्ष और अप्रयत्क्ष प्रभाव पर इतना ध्यान केन्द्रीत नहीं हुआ हैं। बांध और लिंग के बीच के संबंध के बारे में इससे भी कम जानकारी उपलब्ध हैं। अन्य आधारिक संरचना-परियोजना जैसे कि मार्ग और बिजली के प्लान्ट की तरह बडे बांध भी लोगों के जीवन और जीवन संसाधन पर अपनी अनुवर्ती असर बहुत बड़े पैमाने पर छोडते हैं। इसमें विस्थापन और पुनर्वास और प्रगति जैसे समस्यापूर्ण क्षेत्र शामिल हैं। दूसरी ओर बांझी जमीन को बदलने की, बिजली उत्पन्न करने की और रोजगार देने की क्षमता का भी सवाल हैं।

हमारे ज्ञान के अनुसार बडे बांध अन्य आधारिक संरचना की परियोजना से कहीं ज्यादा सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय अनुवर्ती असर पैदा करते हैं। ये इसलिए है क्योंकि बडे बांध वक्त और स्थान से पर नाटकीय और अक्सर अनुत्क्रमणीय परिवर्तन लाते हैं। बडे बांध सामाजिक आयोजन जैसे कि परिवार, समुदाय और बंधुता के परस्पर संबंध, प्राकृतिक और आर्थिक स्रोत, आधारिक संरचना विकास और उपभोग और उत्पादन प्रक्रिया को भी बदलते हैं।

यह सभी बदलाव लैंगिक हैं। स्त्री और पुरुष समजातीय एकम न होकर अपने में और एक दूसरें में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थिति अनुसार विभिन्न हैं। बडे बांध स्त्री और पुरुष पर अलग-अलग असर करतें हैं। इसीलिए बडे बांध से होते लाभ और हानि का लैंगिक द्रष्टिकोण से सूक्ष्म परीक्षण होना जरुरी हैं। नारीवादी साहित्य ने बताया हैं कि समुदाय, राज्य और उसकी संस्थाओं में होनेवाले अजातीय वर्गीकरण स्त्री और पुरुष के बीच रोजबरोज के व्यवहार की जटिलता को किस तरह से छिपातें हैं (Elson, 1998; Boserup 1970, Kabeer 1994)। लिंग को किनारे पे कर देने से गलत निर्देश करता हुआ निष्कर्ष निकलता हैं जो स्त्री और पुरुष की अलग वास्तविकताओं की गिनती नहीं करता और अधिकतर बडे बांध का स्त्री और पुरुष पर प्रत्यक्ष असर भी एसे गलत निर्देश से साफ नहीं होता।

बडे बांध पर उपलब्ध साहित्य सामान्यत: परियोजना प्रभावित व्यक्ति का विवरण देता हैं। इस तरह के अजातीय विवरण स्त्री और पुरुष के विविध हितों और महत्त्वकांक्षाओं को छिपातें हैं। एसे ही परिवार को स्त्री और पुरुष के बीच सहकार या संघर्ष का स्थान नहीं माना जाता हैं (cf. Sen 1990)। परिवार -जहाँ लैंगिक भूमिकाओं को आकार दिया जाता हैं - को एक अविभेदीय एकम माना जाता हैं, जहाँ स्त्री और पुरुष के हित मिलते हैं (Thukral 1996, Indra 1999)। अन्त में मुआवजा या लाभ जिस समुदाय को मिलने वाला है, उस समुदाय को समजातीय माना जाता हैं और सिर्फ पुरुष सदस्यो को ध्यान में रखा जाता हैं। अत: बनाए गए बांध और उनके प्रभाव चाहें सकारात्मक हो या नकारात्मक उनका विश्लेषण लिंग-अंध हो के किया जाता हैं, जैसे स्त्री और पुरुष के बीच कुटुम्ब में, समुदाय में या देश में कोई भेद अस्तित्व ही न रखता हो।

समाज के अतिसंवेदनशील समुदाय जैसे कि स्त्री और बच्चों पर बडे बांध का बहुविधि प्रभाव होता है। यह प्रभाव एक एसा मूल्यांकन मांग लेतें हैं जो आर्थिक नुकसान या डूब प्रभावित समुदाय के संदर्भ में जमीन के नुकसान से पर हो (Colson 1979, Thukral 1996, Parasuraman 1993 & 1997, Srinivasan 1997, World Bank 1993)। इसके उपरांत बडे बांध से समुदाय में मौजुद लैंगिक असमानता और भी बदतर होने की संभावना हैं (Thukral 1996)। कोलसन का कहना हैं " ..... जब लोग राष्ट्रीय विकास के सपनों के आर्थिक कारण से अपनी

जमीन खो बेठतें हैं, तब उनकी बहुविधि पहचान खत्म होने की संभावना होती हैं; वे अजातीय और विस्थापित हो जाते हैं, और उनको अविभेदीय परिवार या कुटुम्ब की तरह माना जाता हैं (1999;25)।"

परन्तु कुछ बदलाव भी आ रहे हैं। 1993 से विश्व बैंक के दस्तावेजों में बडे बांध के कारण विस्थापन का महिलाओं पर नकारात्मक असर के बारें में जिक्र हैं (McCully 1996)।जिसका घटन बांध विरोधी प्रचार के कारण हुआ, और जिसमें बांध बनाने वाले एजन्सीओं और बांध विरोधी आंदोलन भी शामिल हैं, एसा बडें बांध का विश्व आयोग (WCD) बांध के कारण लिंग पर विविध असरों की जांच करने के लिए प्रतिबद्ध है। स्पष्ट हैं ये प्रयत्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा सही दिशा में उठाए गए कदम हैं। फिर भी, हम आशा रखतें हैं कि इसका मतलब ये नही कि लिंग केवल बडे बांध के विवाद में उदभवित अनेक प्रश्नों में एक बन जाए। अथवा बांध और आर्थिक उत्तरदायित्व, बांध और पर्यावरण बदलाव जैसे अनेक मुद्दो कि तरह जांच के लिए और एक मुद्दा न बन जाए। क्योंकि लिंग एक वस्तु नहीं "जिस को डाला और मिलाया" (Indra 1999 :11) जा सकता हैं। बजाय लिंग हरेक क्षेत्र का अभिन्न हिस्सा हैं। इन्द्रा का भावानुवाद करते हुए - लिंग शायद मानवीय गतिविधियाँ और विचार का एक महत्त्वपूर्ण पहलू हैं।

स्त्री और पुरुष के सामाजिक और आर्थिक स्थान पर लिंग का व्यापक प्रभाव पडता हैं और अनुभवों को निश्चित आकार प्रदान करता हैं (Indra 1999 : 2)। इसीलिए लिंग को बड़े बांध के प्रभाव के विश्लेषण में एकीकृत करना जरुरी हैं।

बडे बांध के विवाद में लिंग केन्द्रीय पहलू हैं; पर उसे किनारे पर कर दिया जाता है (Colson 1999:25, Koenig 1995)। यह पेपर लिंग की तर्क संगत दृश्यता को पुनःसाकार करने का प्रयास हैं। बडे बांध के प्रवचन में जो छूट गया हैं उस कमी को हम पूरा करने कि कोशिश में लगें हैं। पूरे विश्व में बडे बांध के इतिहास में लाभ-हानी का वितरण एक मात्रा में नही हुआ हैं। कुछ हद तक एसा होने का कारण बांध बनाने कि प्रवृत्ति में बसे लैंगिक पूर्वाग्रह और अज्ञानता है।

हमारे पेपर का प्रयास कुछ मुख्य क्षेत्रो में बदलाव रेखांकित करने का हैं। स्रोत तक पहुँच, सामाजिक संबंध में परिवर्तन, आर्थिक गतिविधयाँ और निर्णय और सहभागिता की प्रक्रियाएँ शामिल हैं। कुछ और किस्सो में परिवर्तन शायद सकारत्मक भी हो परन्तु महिलाओं के लिए ज्यादातर नकारात्मक परिणाम रहें हैं।

लैंगिक असंतुलन करीब-करीब हर समाज में मोजुद हैं। इस तरह, बांध के पहले भी स्रोत पहुँच और नियंत्रण, लैंगिक भूमिकाओं और संबंधो मे बड़ी मात्रा में असमानताएँ थी। उपलब्ध साहित्य सुझाता हैं कि नए बांध मौजूदा असमानताओं को बढावा देते हैं और लैंगिक अन्तर को कम करने के बजाय उसे बढातें हैं। इन समस्याओं का नदी पर बांधे जानेवाले भौतिक ढाँचे से शायद ही कोई लेनदेन हो, पर वे पितृसत्तात्मक ढांचो से उभरते हैं। मौजूदा सामाजिक-सांस्कृतिक प्रणाली के साथ बडे बांध जैसे तकनिकी हस्तक्षेप का संपर्क नए प्रकार के सामाजिक आयोजन को जन्म देता हैं, जो स्त्री और पुरुष के लिए अवरोध और अवसर दोनो ही पेश करते हैं। इसीलिए सामाजिक द्रष्टिकोण से बडे बांधो का मूल्यांकन लैंगिक अंतराल कम करने में उनके योगदान और स्त्री और पुरुष के जीवन को सुधारने के लिए उनसे जो संभावनाए पेदा होती है, उस आधार पर किया जाना चाहिए। बडे बांध किस तरह से लैंगिक असमानता को बदलते हैं उस पर उनका विश्लेषण केन्द्रीत होना चाहिए। इसीलिए किसी भी समाज में मौजूद लैंगिक असमानताओं को समझना जरुरी हैं; इसके साथ बांध के आयोजन और अमलीकरण दरम्यान इनका परिवर्तन भी समझना जरुरी हैं।

बांध प्रभावित समुदाय निष्क्रिय पीडित नहीं हैं; स्थिति-स्थापक होने से व्यक्ति अलग प्रकार के बदलाव के साथ जी लेते हैं और हानि को लाभ में परिवर्तित कर लेतें है। बांध बनाने की गतिविधियों में समानता को शामिल करने के अधिक प्रयास नहीं हुए हैं। बांध संबंधित हस्तक्षेप में समानता के सवालों को विरल रुप से नहीं लाया गया हैं। न्यायसंगत विकास के लिए अनिवार्य हैं कि मौजूद नई असमानताओं को कम करने की कोशिश की जाए।

लिंग क्या हैं ?

लिंग को स्त्री-पुरुष के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरुप से निश्चित किए गये ढाँचो के रुप में ज़्यादातर देखा जाता हैं। इसके ज़रिये स्त्री-पुरुष के सामाजिक संबंध की रचना की जाती हैं। इसके अंतर्गत उन सारें रिश्तों की गिनती होती है जो स्त्री-पुरुष के बीच सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विनिमय को निर्धारित करते हैं (Jackson & Pearson 1998); इस में परिवार, समुदाय, राज्य और बहुपक्षी एजन्सी भी शामिल हो जाती है।

समाज में स्त्री और पुरुष के बीच भूमिकाएँ, ज़िम्मेदारियाँ, स्रोत और अधिकार के वितरण के केन्द्र में लिंग हैं। इस तरह नियतन, वितरण, उपयोग और स्रोत के नियंत्रण के लिए विचारधारा और व्यवहार में अंतःस्थापित लिंग संबंध आवश्यक हैं।

विश्व के अधिकांश भागों में लिंग संबंधी पूर्वाग्रह मौजूद हैं जिससे स्त्रियों को असुविधा होती हैं। लिंग एक स्थायी अवधारणा नहीं; बल्कि विभिन्न सांस्कृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक संदर्भ के अनुसार बदलता हुआ विचार हैं। इसीलिए स्त्रियों में समजातीयता की धारणा गलत हैं। लिंग सिर्फ स्त्रियों पर केन्द्रीत नहीं; परन्तु स्त्री और पुरुष के परस्पर संबंध, उनके विविध भूमिकाओं की लैंगिक परिभाषाओं या व्यवहार, संबंध और स्रोत पर नियंत्रण को भी समाविष्ट कर लेता हैं।

क्योंकि लिंग हरेक क्षेत्र को प्रभावित करता हैं, सामाजिक या समानता और वितरण का विश्लेषण लिंग को चर्चा मे लाये बगैर आगे बढ नहीं सकता। नीति-निर्माताओं, सामाजिक परामर्शको और लिंग तज़ज्ञों कि बढती हुई संख्या अब लिंग को मुख्यधारा में लाने की ओर कार्यो के "लैंगिकरण" की बात कर रहें हैं । वे लिंग को अवधारणा के रुप में और व्यावहारिक रुप में व्यापक मुद्दों की चर्चा करने के लिए इस्तमाल कर रहें हैं; इन मुद्दों में बलत् (forced) पलायन (cf. Indra 1999), विकास में सहयोग (DIFD 1999) और स्वास्थ्य का समावेश होता हैं। आगे के विभाग में हम लिंग को मुख्यधारा में लाने के प्रयासो की लम्बी प्रक्रिया को देखेंगे।

लैंगिक समानता : आन्तरराष्ट्रीय विकास का ध्येय

पिछले कुछ दशकों में ये माना गया हैं कि विकास प्रक्रियाएँ जैसे कि आर्थिक प्रगति लिंग के प्रति निष्पक्ष नहीं हैं। अच्छी नीति के व्यवहारिक स्वरुप न दे पाने से समानता के ध्येय कई बार हवा में उड जाते हैं (DFID 1999)। अगर बांध विकास प्रक्रिया के तहत बनाये जा रहें हैं, तो बांध बनानेवाले बहुपक्षीय - राष्ट्रीय - और आन्तरराष्ट्रीय एजन्सीयों को नीति और व्यवहार में लैंगिक समानता के ध्येय को स्पष्ट समर्थन देना चाहिए। एसा नहीं करने से लैंगिक दृष्टिकोण से लाभ-हानि के वितरण में काफी असमानता रहेगी। समानता के अभाव से बांध की कार्यक्षमता पर काफी असर हो सकता हैं - जो कि बांध बनाने कि प्रक्रिया में बहुत महत्त्व रखता हैं।

बाकी विभाग में हम इस बात कि समीक्षा करतें हैं कि लैंगिक समानता के प्रश्नों को बडे बांध के संदर्भ में किस तरह से सुलझाया गया हैं।

समानता, वितरण और लिंग

प्रभावों का मूल्यांकन मुख्य दो अक्षों पर निर्भर होना चाहिए - समानता और वितरण। लिंग संशोधक काफी अरसे से समानता और वितरण से संबंधित प्रश्नो से चिंतित हैं। इनमें विकास के लाभ-हानि को झेलने में लैंगिक अन्तर के कारण प्राथमिक हैं। अतः स्रोत के नियतन और वितरण में विसंगति को समझना ज़रुरी हैं।

विकास को सामान्यतः आर्थिक वृद्धि के बराबर माना जाता हैं। एसा तर्क किया जाता हैं कि आर्थिक वृद्धि से सभी का कल्याण होगा। परन्तु नारीवादीओं ने इस धारणा को दो तरिकों से चुनौती दी हैं। सबसे पहले उनका कहना हैं कि विकास की ओर बढने के प्रयास से सभी हिस्से की न्यूनतम ज़रुरतों को पूरी करने की कोशिश से ध्यान हटना नही चाहिए। इससे असमान तरिके से बढता हुआ विकास समानता के ध्येय को पूरा नही कर सकता; अथवा स्त्री और पुरुष को ये सामाजिक या आर्थिक न्याय तक पहुँचा नही सकता। समानता के उद्देश्यों का पालन करने के लिए विकास न्यायसंगत

होना चाहिए। अतः विकास के अन्तर्गत पुनः वितरण की प्रक्रिया का समावेश होना अनिवार्य हैं। क्योंकि एसी प्रक्रिया से ही स्त्री और पुरुष, ताकतवर और निर्बल समुदायों के बीच लाभ और हानि का समान वितरण संभव होगा।

दूसरें स्तर पर लिंग संशोधक ये भी मानते हैं कि आर्थिक विकास का स्त्री और पुरुष पर समान असर नहीं होता। उन्होंने ये साबित कर दिखाया हैं कि परिवार "समान हितों का एकम" नहीं हैं (Agarwal, 1994:3), जहाँ सारे सभ्यों के बीच स्रोतों का समान वितरण होता हैं। इसीलिए विकास को लिंग के दृष्टि से न्यायसंगत होने के लिए ये ज़रुरी हैं कि नीति और व्यवहार में स्त्रियों के हित को ध्यान में रखा जाए।

स्रोत की उपलब्धी में स्त्री और पुरुष की भिन्न भूमिकाओं पर नज़र डालने से ये साफ होता हैं कि समानता और वितरण जुडे हुए प्रश्न हैं। न्यायसंगत वितरण समानता और समान संबंधों पर आधारित हैं। एसे ही बडे बांध के लाभ-हानि को जाँचने में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजकीय पहलूओं का समावेश अनिवार्य हैं। ये दृष्टिकोण संकुचित, अलैंगिक, आर्थिक विश्लेषण के विपरित हैं। बडे बांधो का बंधुता के ढाँचो और समुदाय के पहचान पर गहरा असर होता हैं (Dreze et al, 1998)। बंधुता के ढाँचे एसे स्रोत है जिन पर व्यक्तिगत कल्याण निर्भर हैं। इसीलिए बांध के प्रभावों के मूल्यांकन में उनको नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता हैं। अन्य और स्रोतों में जंगल, ज़मीन, नदी और पर्यावरण है जो बडे बांधों से प्रभावित समुदायों के सामाजिक और सांस्कृतिक सांचे के अभिन्न पहलू हैं।

लिंग संशोधक एसे अदृश्य पहलूओं को सामने लाना चाहता हैं, इससे वे लाभ-हानि मूल्यांकन के उपयोग में लाए गए मुख्यधारा के विचार के प्रति संदेह व्यक्त करतें हैं। समाज और संस्कृति भी समानता और वितरण के प्रकार्य है; इसी तरह स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण भी उसके अभिन्न हिस्से हैं। लिंग केन्द्रीत दृष्टिकोण में तुलनपत्र (balance-sheet) नज़रिया पूछताछ का प्रबल प्रकार हैं जो स्थापित हितों का प्रतिनिधित्व करतें हैं। छूपे हुए हानि और अगोचर हानि पहलूओं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में शामिल हैं - एसे पूछताछ नज़रअंदाज़ करते हैं। बडे बांध जैसी परियोजना

व्यापक हानि पहुँचा सकती हैं। जो पर्यावरणीय, सामाजिक या आर्थिक हैं। लाभ-हानि विश्लेषण (cost-benefit analysis) खास तौर पर बडे बांध जैसी परियोजनाओं के लिए बनाए गए थे। सीधे आर्थिक असरों को पहचानना मुश्किल नहीं। परंतु सामाजिक - सांस्कृतिक पहचान में परिवर्तन और समुदाय के कल्याण के लिए अतिआवश्यक भौगोलिक स्थान जैसे परोक्ष प्रभावों के लिए एसे विश्लेषण की उपलब्धि क्या हैं ? पारम्परिक लाभ-हानि विश्लेषण के विरोधकों कि बढती हुई संख्या का मानना हैं कि एसे अगोचर प्रभावों को मापने के लिए यह विश्लेषण प्रणाली काम में नहीं आती (Kabeer, 1994 and Elson 1998; The Corner house 1998)।

इस विश्लेषण में बाज़ार के प्रति झुकाव साफ नज़र आते हैं। ये हकीकत हैं कि बाज़ार तटस्थ नहीं हैं। इसके प्रतिकुल बाज़ार सैधान्तिक स्थल हैं जो सामाजिक और ताकत के संबंध से बोझल हैं; जहाँ कुछ चीज़ों की कीमत बढ़ती हैं (उ.त. सिंचीत ज़मीन, सार्वजनिक संपत्ति ज़मीन से ज़्यादा कीमती मानी जाती हैं; या पुरुषो के आर्थिक गतिविधियों को स्त्रीयों कि गतिविधियों कि तुलना में ज़्यादा कीमती समझा जाता हैं)। दूसरे स्तर पर जीविका के रणनीतियों कि नुकसान जैसे अगोचर पहलु पर कीमत लगाना नामुमकिन हैं, क्योंकि इन का हिसाब पैसे से नहीं कीया जा सकता और ये बाज़ार में प्रवेश नहीं करते हैं। स्त्रियों के जीवन और गतिविधियाँ इन्हीं अगोचर पहलूओं के आस-पास केन्द्रीत हैं जिससे लाभ-हानि के लैंगिक रुपरेखा का पारम्परिक विश्लेषण से गिनती करना कठिन हैं । अतः किसी भी सामाजिक प्रभाव के मूल्यांकन का विश्लेषण करने के लिए ज़रुरी हैं कि छूपे और अदृश्य परिवर्तन और हानि को बहार निकालना। हमारा प्रयास रहा हैं कि बडे बांधों का मूल्यांकन व्यापक दृष्टिकोण से करें, जिसमें समुदाय के जीवन के सारे पहलू साथ आए।

बडे बांध का सामाजिक प्रभाव : लैंगिक दृष्टिकोण से

पर्यावरण, समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था पर बडे बांधों का गहरा असर होता हैं। यह असर चाहें सकारात्मक हो या नकारात्मक, परियोजना-प्रभावित स्त्री-पुरुष के जीवन में परियोजना से बहुत बडे परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन सामाजिक या आर्थिक शून्य में नहीं होतें। बडे बांध के सामाजिक प्रभाव स्रोत वितरण और नियतन की प्रणाली और मौजूद सामाजिक संबंधों के साथ जुडे हुए हैं, और उन्हीं पर बनते हैं। अर्थपूर्ण सामाजिक या लैंगिक विश्लेषण के लिए मौजूदा प्रणाली को समझना अनिवार्य हैं।

बांध संबंधित परिवर्तन लैंगिक हैं और जैसे हमारी उपरोक्त रुपरेखा से स्पष्ट हैं, पारम्पारिक तरिकों से नुकसान की गिनती करना मुश्किल हैं। संस्कृति, परियोजना की रणनीति और उद्देश्य जैसे परिर्वतनीय उपादान की वजह से हरेक परियोजना के असर में विशिष्टता होती है। फिर भी सामाजिक परिवर्तन के उन पहलूओं को पहचाना जा सकता हैं जिन में लिंग मुख्य भूमिका अदा करती हैं।

स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण

आवश्यक स्रोतों में प्राकृतिक स्रोत (ज़मीन, पानी, इंधन, चारा, जंगल और जंगल उपज), आर्थिक स्रोत (बाज़ार और उधार सेवा, कुशलता बढाने के कार्यक्रम इति) और सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्रोत (बंधुता के ढाँचे, स्थानिय ज्ञान व्यवस्था), का समावेश होता हैं।

दुनियाभर में स्रोत की उपलब्धि और नियंत्रण में लैंगिक असमानताएँ फैली हुई हैं। व्यापक संशोधन के द्वारा स्त्रियों के ज़मीन पर नियंत्रण के अभाव पर काफी दस्तावेजीकरण हुआ हैं (cf. Agarwal 1996, Berry 1987)। आफ्रिका और एशिया में ज्यादातर महिलाओं का ज़मीन पर इस्तमाल के अधिकार हैं पर ज़मीन पर उनका उत्तराधिकार बहुत कम मात्रा में पाया जाता हैं। अलग-अलग सामाजिक तंत्र द्वारा स्त्रियों के कृषिकीय श्रम पर परिवार नियंत्रण रखता हैं, खेती और अन्य प्रवृत्तियों पर स्त्रियाँ जो श्रम लगाती हैं, उसके लिए वेतन बहुत कम मात्रा में श्रम के बराबर मिलता हैं। इसी

तरह, लैंगिक पूर्वाग्रहो की वजह से स्त्रियों को सिंचाई सुविधा और बाज़ारु सेवाओं से दूर रखा जाता हैं।

बडे बांधों के संदर्भ में, स्त्री और पुरुष के स्रोत तक पहुँच ओर नियंत्रण में महाकाय परिवर्तन अनिवार्य हैं। कुछ किस्सों में स्त्रियाँ शहरी और बाज़ारु सुविधा का इस्तमाल कर पाती हैं जो बांध के पहले असंभव ही था। इससे उनके लिए आर्थिक विकल्प पेश आते हैं और उनकी प्रवृत्तियों पर सकारात्मक प्रभाव हो सकतें हैं। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में पानी और बिजली की सुविधा बढ़ने या सुधरने से भी सकारात्मक लैंगिक परिणाम संभव हैं। परन्तु स्रोत तक पहुँच का नतीजा ये नहीं कि स्त्रीयों का स्रोत पर नियंत्रण रहेगा। उ.त. जहाँ सिंचाई सुविधा बढती हैं, अगर सिंचाई नहर और पानी के पम्प पर पुरुषों का अंकुश रहेगा तो स्त्रियों के लिए पानी पर अंकुश संभव नहीं। परन्तु बडे बांध स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण में मौजूद असंतुलन पर ही बनते हैं और अक्सर नई असमानताएँ उत्पन्न करतें हैं।

भारत में पुनर्वास योजनाओं के तहत स्त्रियों को शायद ही ज़मीन दी जाती हैं (Thukral, 1996); जिससे पितृसत्तात्मक विचार-जो स्त्रियों को नीजी ज़मीन मालिकी नहीं देता - को बल मिलता हैं। कुछ किस्सो में स्रोत पर स्त्रियों के इस्तमाल अधिकार का भी संक्षारण हो सकता हैं। उ.त. बांध के उपरवास क्षेत्रों (upstream areas) में वनीकरण कार्यक्रम के तहत जंगल के कुछ हिस्सो में प्रवेशबंध लगाया जाता हैं; स्त्रियाँ जंगल के प्राथमिक इस्तमाल करनेवालों में से है, और उन पर ईधन इकट्ठा करने की ज़िम्मेदारी हैं, एसी परिस्थिति में उनके लिए जंगल बंध हो जाता हैं। कम से कम शुरुआती तबक्कों में पुनर्वास योजनाओं से अपर्याप्त स्रोत के लिए प्रतियोगिता बढ़ती ही हैं। इस संदर्भ में, जैसे की पनामा के एक बंध पुनर्वास योजना के उदाहरण से स्पष्ट होता हैं, स्त्रियाँ अपर्याप्त स्रोत का कम से कम खर्च करती हैं (Koenig 1995 : 36)।

कुल मिलाकर, जब कि बडे बांध मौजूद असमानताओं पर ही बनते हैं, स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण के संदर्भ में बांध से असमानताएँ और गहरी नहीं हो जानी चाहिए। बडे बांध के कुछ प्रभावों से

परिवार के पौषणिक दर्जे पर लम्बा असर हो सकता हैं (उ.त. सार्वजनिक जनसंपत्ति के नुकसान का मतलब हैं कि चारा, जंगल और पानी का अभाव। इससे जीवन संसाधन पर असर होता हैं)।

लैंगिक संबंध

सिंचाई से उत्पादन प्रक्रियाओं में बदलाव, पुनर्वास से होती हुई विस्थापन, बांध के नीचेवास में परिवर्तन से व्यवसायिक बदलाव, - इस सभी का समुदाय में सामाजिक और लैंगिक संबंधों पर गहरा असर होता हैं। कभी-कभी बडे बांध के सामाजिक प्रभाव से लैंगिक संबंधों में समानता बढ सकती हैं (उ.त. एक पुनर्वास योजना में ज़िंब्बावे की स्त्रियाँ भूतकाल के बंधुता ढाँचों से कम सीमित रही और उनके पतियों के साथ बहतर रिश्ते बना सकी (Koenig 1995 : 25)। किन्तु हमारे पास उपलब्ध माहिती के अनुसार बडे बांध से ज़्यादातर लैंगिक असमानताएँ और तीव्र हो जाती हैं, कम नहीं होती।

श्रम-विभाजन और आर्थिक गतिविधियाँ

शहरी और ग्रामीण परिवारों में स्त्री और पुरुष की विविध भूमिकाएँ और ज़िम्मेदारियाँ हैं, जो सामाजिक और सैधान्तिक धारणाओं पर निर्धारित हैं। पुनर्वास या शुष्कभूमि से सिंचित खेती में परिवर्तन से स्त्री-पुरुष के बीच श्रम-विभाजन में महाकाय बदलाव हो सकतें हैं। एसे परिवर्तन का असर हर स्त्री-पुरुष के लिए समान नहीं होता, बल्कि उनके वर्ग और सामाजिक स्थान पर निर्भर होता हैं। जीविका खेती (subsistence agriculture) के बदले व्यापार के लिए फसल उगाने के परिवर्तन भी स्त्री और पुरुष को अलग तरिको से असर करता हैं। क्योंकि व्यापार के लिए बाज़ार पर निर्भरता, पूंजी की आवश्यकता इति से स्त्रियों का निर्णय - प्रक्रिया से वर्जित होने की संभावना हैं।

नर्मदा घाटी से गुजरात के समतल भूमिप्रदेश में विस्थापित हुई आदिवासी स्त्रियों के लिए फुरसत का समय ज़्यादा बढ़ गया। परन्तु जंगल के नुकसान से उनके आर्थिक गतिविधियों में कटौती हुई; जंगल उपज की बिकरी से स्त्रियाँ कुछ कमा लेती थी (Mehta, forthcoming)। सिंचित खेती से एक

ओर परिवार का धन बढ सकता हैं; दूसरी ओर उससे दुगुना या तिगुना फसल लेने से स्त्रियों पर काम का बोझ बढ भी सकता हैं। खेती में यन्त्रीकरण से स्त्रियाँ पारम्पारिक व्यवसायों से विस्थापित होती हैं ; क्योंकि लैंगिक श्रम-विभाजन से ज़्यादातर स्त्रियों के पास यंत्र चलाने या संभालने की निपुणता नही होती। और अधिक कुशलता बढाने के लिए चलाए जाते सरकारी कार्यक्रम ज़्यादातर पुरुषों के लिए ही होते हैं।

सहभागिता और निर्णय प्रक्रिया

बडे बांधों की योजना, अमलीकरण और कार्यकरण के संदर्भ में सहभागिता एक बढ़ती हुई चिंता का विषय हैं। सहभागिता पर ये सारी प्रवृत्तियाँ निर्भर होनी चाहिए; इसके साथ-साथ यह प्रक्रिया नीचे से उपर की ओर बढनी चाहिए।

योजना को कार्यान्वित करनेवाले अधिकारी प्रभावित समुदायों को भविष्य संबंधित निर्णय प्रक्रिया में शामिल करने का प्रायस शायद करतें हो। परन्तु, समुदाय के सांस्कृतिक ढाँचों के प्रति सहानुभूति रखतें हुए, जिससे पुरुषों को आपत्ति न हो, स्त्रियों को परियोजना की योजनाकीय अवस्था में शायद ही शामिल किया जाता हैं। समुदाय के लैंगिक पूर्वानुमान की वजह से भी एसी प्रवृत्तियाँ (जिन से उनके जीवन पर निर्णायक असर होता हैं) में शामिल करने से रोक देते हैं। हमारी समीक्षा भी यही संकेत देती हैं कि पुनर्वास की प्रक्रियाओं में स्त्रियों के साथ परामर्श का स्पष्ट अभाव हैं। इस अभाव के कारण पारिवारिक कल्याण और स्वास्थ्य पर कई अप्रत्याशित परिणाम होते हैं। सिंचाई योजनाओं में पानी इस्तमाल करनेवाले समूहों में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर होता हैं (Merry and Baviskar, 1997)।

संस्थाकीय आयोजन

स्त्री और पुरुष के संस्थाकीय स्थान भिन्न है। आम तौर पर संस्थाएँ समाज में प्रचलित लैंगिक और सत्ताकीय रिश्तो को परावर्तित करती हैं। औपचारिक और अनौपचारिक संस्थाओ का, आम तौर

पर, सह-अस्तित्व होता है। उ.त. जमीन अधिकार औपचारिक भी है और प्रथागत कानून (customary law) शासन से भी नियंत्रण हो सकता है। कई बार अनौपचारिक संस्थाकीय योजना के तहत स्त्रियों के संपत्ति, जमीन और पानी पर अधिकार होते है, जो नये औपचारिक संस्थाओं के गठन से नष्ट हो जातें है। इससे अतिरिक्त प्रथागत कानून और अनौपचारिक संस्थाएँ भी स्त्रियों के प्रति भेदभाव व्यकत करतें है। उ.त. साहेल के ज्ञाति-आधारित समाज, जहाँ इस्लाम के विशेष अर्थघटन से महिलाएँ किनारे पर कर दी जाती है। अतः लिंग के प्रति सहानुभूति रखनेवाले संस्थाओ के गठन से एसे पूर्वाग्रहो को दूर किया जा सकता है। परन्तु नई संस्थाएँ पुरुष-प्रधान हो सकती है जो स्त्रियों की सोदा करने की ताकत को घटा सकती हैं। इससे स्त्रियों को अनौपचारिक संस्थाओं से मिलती न्यूनतम् अधिकारों का भी क्षय हो सकता हैं।

आदर्श यही है कि संस्थाकीय योजनाओ को मौजूद लैंगिक भेदभाव को बढ़ावा नहीं देना चाहिए, लैंगिक असमानताओं का सामना करने के लिए नम्य विकल्प उत्पन्न करने चाहिए, और एसी प्रक्रियाओं कि शुरुआत करनी चाहिए जिससे महिलाओं के लिए विकल्प बढ़े, फिर चाहें इसका मतलब यह क्यों न हो की वे स्त्रियों के सशक्तिकरण के प्रति झुकाव रखते हो।

सामाजिक-सांस्कृतिक कल्याण और पहचान के सवाल

नदी घाटी में बसे समुदाय अपने अस्तित्व को प्राकृतिक वातावरण से परिभाषित करतें है। उ.त. नर्मदा घाटी समूह के पहचान का चिन्ह है। नदी और घाटी ने समुदायो के इतिहास को आकार प्रदान किया है। स्थानीय इतिहास का प्रतिनिधित्व करनेवाले नदी और घाटी के सातत्य के विघटन से दुःखद परिणाम उभरते है। जब कि समुदाय के स्त्री और पुरुष दोनों पर मानसिक आघात होता है, स्त्रियों को हताशा या निराशा व्यक्त करने के बहुत कम अवसर या रास्ते होते है। समुदाय की सामुहिक पहचान में इस तरह के परिवर्तन समुदाय के कल्याण को भिन्न तरीकों से असर कर सकतें है।

दक्षिण एशियाई संदर्भ में स्त्रियाँ पुरुषो की तुलना में कम गतिशील है। सामाजिक व्यवस्था में बदलाव महिलाओं को ज्यादा असर करता है। (cf. Thukral 1996; Parasuraman, 1993)।

विस्थापन से उभरती आर्थिक कठिनाइयों की वजह से स्त्रियों को खेती में अधिक श्रम लगाना पड़ता है; इस संदर्भ में महिलाओं की मर्यादित गतिशिलता के हानिकारक निहितार्थ हो सकतें है।

सामाजिक प्रणाली और परम्परा में मौजूद लैगिक असमानताओं से महिलाओं पर यौनिक और शारीरिक हिंसा के बढ़ने की संभावना भी है। जब समुदाय विभन्न हानिकारक परिणामों से पीडित है तब इस तरह के परिवर्तन से, हिंसा के अनुसंधान में स्त्रियाँ घर के भीतर और बाहरी समाज में और भी अस्थिर हो जाती है। उ.त. भारत में, सरदार सरोवर परियोजना के पुनर्वास स्थलों, करिबा और ग्वेम्बे टोंगा के पुनर्वास स्थलो में शराब की उपलब्धि से पारिवारिक हिंसा बढ़ी है। एसे सदर्भ में पाया गया है कि जब पुरुष सत्ताहीन हालत में है, तब स्त्रियाँ आसानी से बलि का बकरा बन जाती है (Colson, 1999)।

स्त्रियाँ ज्यादातर अपने हित और जरुरत को समुदाय के बडे समूह के अर्न्तगत ही परिभाषित करती हैं। परिवार या समुदाय में ढ़ांचागत परिवर्तन (खास करके पुनर्वास की वजह से हुए परिवर्तन) से स्त्रियों कि असुरक्षा बढ़ सकती है। सिंचाई से उत्पन्न हुए सामाजिक परिवर्तन से भी महिला और पुरुष की पहचान पर गहरा असर हो सकता है।

विस्थापन, पुनर्वास और लिंग

विस्थापन बडे-बांधो का सबसे दर्दनाक परिवर्तन है। विस्थापन ज्यादातर उन्हीं समुदायों का होता है जो पहले से ही व्यवस्थाकीय अन्याय के शिकार है (जैसे की आदिवासी समुदाय) (Thukral, 1992)। इन समुदायों मे स्त्रियाँ पर विस्थापन की त्रासदी अधिक तीव्र होती है। और अधिक, विस्थापन कई बार बल का उपयोग करके किया जाता है। इससे विस्थापन की प्रक्रिया में विरोध पर दमन होता है और लोकतांत्रिक अधिकारों का बड़े पैमाने पर उल्लंघन होता है (Thukral, 1992, McCully 1996)। यह भी स्पष्ट है कि अक्सर परियोजना-प्रभावित समुदायो को पर्याप्त चेतावनी न मिलने से उन्हें डूब का सामना करना पडता हैं (Thukral 1992, McCully 1996)। जहाँ जन संगठन और आंदोलन नहीं मौजूद हो, वहाँ यह अक्सर पाया जाता है ।

आज यह माना जाता है कि पुनर्वास ज्यादातर समुदायों के लिए दुःखद अनुभव है (Cernea,1997, Morse et al 1992)। "पुनर्वास से एक चौडे वर्णक्रम के अंर्तगत लैंगिक संबंधो का पुनःर्घटन होता है। पर ये पुनःर्घटन इन प्रक्रियाओं में शामिल लोंगो के पूर्वानुमान और उनके अनुभव पर ही आधारित होता है," ऐसा कॉलसन का कहना है (1999 : 26)। पुनर्वास और पुनःस्थापना के प्रयत्न लैंगिक समझ और विस्थापन से लैंगिक भूमिकाओं के बदलाव की दृष्टि से भी गलतियों से भरपूर हो सकते हैं। लिंग-अंध नीतियाँ और प्रभावित समुदायों में सामाजिक ओर सांस्कृतिक प्रणाली के हानिकारक असर ज्यादातर स्त्रियों को ही झेलना पडता है, खास करके परिवार और बाजार के क्षेत्रों में।

परियोजना-प्रभावित समुदायों में, स्त्री और पुरुष दोनों में, लैंगिक पूर्वानुमान के सख्तियों का आन्तरिकरण होता है । अक्सर नीति इन पूर्वानुमान को बल देती है। इससे बडें बांधो के लाभों का फायदा स्त्रीयों को नही होता (Colson 1999)। और फिर आम तौर पर पुरुषों को परिवार के मुख्या समझा जाता है, और परिवार को एकम समझा जाता है। नतीजा ये होता है कि जब की उपनिवेशक, उसकी पत्नी और बच्चों से विस्थापित समुदाय बनता है, उपनिवेशक पुरुष को ही माना जाता है। एसे पूर्वानुमान नीति और अमलीकरण में मौजूद हैं, जिसकी वजह से समुदाय के सामाजिक आयोजन में मौजूद असमानताएँ और बढ़ती हैं।

इस हिस्से में हम लिंग पर पुनर्वास की प्रक्रिया का असर दिखाना चाहतें है। हम नीति और अमलीकरण में उपस्थित लैंगिक पूर्वाग्रहो पर भी टिप्पणी करना चाहतें है।

हम दों केस स्टडिज का इस्तमाल यहाँ कर रहें है। झाम्बिया में करिबा बांध प्रभावित ग्वेम्बें टोंगा नाम के आदिवासी समूह पर कॉलसन और स्कडर के अभ्यास (Colson 1999) पर आधारित हमारा पहला उदाहरण हैं। दूसरा है, भारत की सरदार सरोवर परियोजना, जो कि नर्मदा नदी पर बनाई जा रही है।

विकास से विस्थापित : करिबा बांध

१९५६ में ग्वम्बे टोंगा समुदाय को झेम्बेजी मध्य घाटी में स्थित ग्वम्बे घाटी से करिबा बांध के लिए हटाया गया था। यह बांध १९५८ में पूरा किया गया। कॉलसन (1999) के संशोधन के अनुसार विस्थापित समुदाय पर महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव पड़े। इन में से कुछ हम यहाँ पेश करते है ।

पुनर्वास के पूर्व ग्वम्बे पुरुष और स्त्री दोनों ही सामाजिक एवं पारिवारिक निर्णय प्रक्रिया में सहभागी थे। रिश्तेदारो की दी हुई जमीन पर महिलाओं का पूरा नियंत्रण था। पुरुषो से अपेक्षित था कि वे पत्नी को जमीन का एक हिस्सा दे, स्त्रियाँ अपने पति के जमीन पर भी काम करती थी। तलाकशुदा औरतो का अपनी जमीन पर अधिकार रहता था और पति के दिए हुए जमीन को लौटा देना पडता था। स्त्री और पुरुष के अन्न भंडार अलग अलग हुआ करते थे ।

जीविका के लिए परिवार महिलाओं के अन्न भंडार का उपयोग करते थे। स्त्रियाँ पशुसमूह में भी पूंजी निवेश करती थी, हालांकि उनके पास पुरुषो की तुलना में कम पूंजी होती थी। पुरुषो के अन्न-भंडार परिवार या अन्य आश्रित व्यक्तियों के लिए उपयोग नही किया जाता था। परन्तु परिवार के आधिशेष जरुरतो के लिए पुरुषो के अन्नभंडार का उपयोग किया जाता था। कुछ हद तक ये कहा जा सकता है कि घर के भीतर स्त्रियो के कार्य क्षेत्र स्वायत थे।

पुनर्वास के प्रायः महिलाओ की सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता कम ही थी और उनकी सामाजिक हलन-चलन समुदाय तक सीमित थी। बाजार तक उनकी पहुँच कम थी। जहाँ पुरुष घर बनाने में श्रम लगाते थे, स्त्रियाँ घास काटने और घरों को लेपने का काम करती थी। स्त्री और पुरुष दोनों खेत जोतने, बोने और फसल काटने का काम करते थे। पुरुष-पलायन सामान्य था और इसलिए स्त्रियों के श्रम से ही खेतो में काम जारी रहता था। विवाह द्वारा पुरुष स्त्रियों के श्रम पर नियंत्रण रखते थे। गाँव में पाठशालाओं की कमी थी, और इनमें जबकि भरती का स्तर कम ही था, लडकियों की तुलना में लडके ज्यादा थे। इससे समुदाय में लैंगिक भेदभाव का संकेत मिलता हैं।

करिबा बांध से विस्थापितों पर व्यापक परिणाम हुए १९५६ में पुनर्वास से काफी बदलाव आया। ओपनिवेशक अधिकारियों ने पुरुषो को ही नेता और मुखिया की मान्यता दी। समुदाय में उपस्थित लैंगिक संबंध ने पुरुषो को बाहरी क्षेत्र के कार्य संभालने की जिम्मेदारी थी; इसीलिए पुनर्वास के मामले में पुरुष-प्रधान प्रतिनिधित्व को समुदायने स्वीकार लिया। समुदाय में मौजूद इस द्विभाजन को ओपनिवेशक नीतियों ने ओर बल दिया। ओपनिवेशक अधिकारियों के बनाएँ स्थानिय सरकार में स्त्रियों को शामिल ही नहीं किया गया। अतः ओपनिवेशक राज्य के साथ बातचीत में भी स्त्रियाँ नही रही; और उनका राज्य के साथ लेन-देन पुरुषो द्वारा ही था।

पुनर्वास के बरसों बाद भी स्त्रियाँ पीडित थी। नये वातावरण को स्वीकारने में उन्हें काफी तकलीफ हुई। पुनर्वास के १०-१५ साल बाद भी वे जानना चाहतें थे कि बांध कब नष्ट होगा। पुरुषो के लिए पुनःस्थापन ने एक राजनैतिक हार का स्वरुप लिया क्योंकि उनके लिए विस्थापन इज्जत गवाँने और सत्ताहीन होने का अनुभव था। पारिवारिक हिंसा बढने लगी, इसका एक कारण यह भी है कि शराब बड़े पैमाने में पुनर्वास स्थल में मिलने लगी। सामाजिक ढांचो के विघटन से पारिवारिक विवाद को नियंत्रित करनेवाली सामाजिक अतर्रोध के अभाव रहें। परिवार में जब रिश्तों के ढांचों का परिवर्तन हुआ तब स्त्रियों ने सौदा करने की ताकत गवाँ दी।

जमीन के लिए मुआवजा नही दिया गया, इसके बावजूद कि ये माना गया था कि किसी भी जाति या उमर के व्यक्ति जिसके पास जमीन है उसको मुआवजा मिलेगा। औपनिवेशक अधिकारियों के लैंगिक

पूर्वानुमान के अनुसार पुरुष परिवार के मुख्या माना गया, और मुआवजा उन्हीं को दिया गया। इसकी तुलना में स्त्रियों को बहुत कम मुआवजा मिला और इसके साथ वे अपनी जमीन और संपत्ति पर अधिकार खो बैठीं। और अधिक, समुदाय के लैंगिक पूर्वानुमान ने औद्योगिक विकास और बाजार की पहुँच स्त्रियों के लिए सीमित कर दी थी। इससे स्पष्ट हैं कि सामाजिक लैंगिक पूर्वाग्रहो के साथ आने से ग्वेम्बे टोंगा स्त्रियों को पुनवार्स की प्रक्रिया में किनारे पर कर दिया गया।

पारम्परिक जमीन नियतन की प्रथा के टूटने के बाद स्त्रियों ने खोए हुए सम्पत्ति अधिकार वापस लेने के प्रयत्न किए। महिला रिश्तेदारों की पुनर्वास स्थल में जमीन की मांग पुरुषो को अच्छी नहीं लगी । इसका एक परिणाम ये रहा कि स्त्रियों को जमीन की मांग करने से रोकने के लिए पुरुष अक्सर महिला रिश्तेदारों का अयोग्य व्यक्तियों के साथ विवाह का आयोजन करने लगें; यह खास करके तलाकशुदा या विधवा स्त्रियों के लिए सही था। स्त्रियों के अन्न भंडार अब भी परिवार की जरुरतो को पूरा करने के लिए इस्तमाल किया जा रहा था। इसलिए पुरुषो की तरह स्त्रियाँ के पास खेतों की सफाई के लिए काम करने वाले मजदूरो को देने के लिए अन्न नहीं रहा। वित्तीय जरुरतो को पूरा करने के लिए स्त्रीयाँ अन्न का उपयोग शराब बनाने के लिए करने लगी क्योंकि उससे उनको ज्यादा पैसे मिलते थे। अतः जमीन और अन्न खो देने से स्त्रियाँ आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रो में किनारे पर सरकती गई ।

पुरुषों को शासन में कुशलता बढ़ाने के कार्यक्रमो में शामिल किया और रास्तें बनाने के काम में रोजगारी के लिए ले लिया। कपास की खेती के लिए विस्तृत सेवा और उधार के लिए सुविधा प्राथमिक तौर पे पुरुषो के लिए ही उपलब्ध कराई गई। परन्तु सुधरी हुई सेवा और छोटी दुकानो के फैलाव की वजह से स्त्रियों से सामान बेचने में आसानी हुई। १९५७ में ज्यादातर ग्वम्बे स्त्रियों के पास खुद की खेती थी। १९७० तक जवान स्त्रियों ने बताया कि वे अपने पति के साथ खेती कर रही थी। नीजी उपयोग के लिए पहले की तरह जमीन नियतन बंद हो गई थी । और अधिक, जवान स्त्रियों के पास खूद के अन्न भंडार नहीं थे।

पुनर्वास के प्रति स्त्रियों की विविध प्रतिक्रियाए रही। ज्यादातर १९७० में पुनवार्स के दस साल बाद भी स्त्रियाँ पुरानी जिन्दगी बहतर समझती थी क्योंकि वहाँ जमीन, नदी और रिश्तेदार स्थायी रुप में

थे। परन्तु जवान स्त्रियों को नई गतिशीलता, दुकान और पैसो की उपलब्धि पसन्द थी। बांध की बजह से वे अपने आप को एक राष्ट्रीय समुदाय का हिस्सा भी समझने लगे थे। इन स्त्रियों की शिक्षण तक पहुँच थी और आमदनी के अवसर भी ज्यादा थे। अब जमीन एकमात्र जीवन निर्वाह का साधन नही रहा। अतः उम्र जैसे कारक ने भी पुनर्वास के अनुभव में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। पुनर्वास के कई साल बाद ये पाया गया कि जवान महिलाएँ अपने आप को सिर्फ अन्न उत्पादक या जननी के रुप में नहीं परिभाषित कर रही थी।

परन्तु बांध से उभरते हुए यह लाभ परियोजना के हिस्से नहीं थे। विस्थापित स्त्री और पुरुष की क्षमता और अनुकूलनशीलता की वजह से यह संभव हुआ। स्पष्ट है कि यह प्रक्रिया नई पीढ़ी के लिए ज्यादा आसान रही। जैसे विवाह के बाज़ार बढने लगे, वैसे स्त्रियाँ, माताएँ होने के नाते अपने पुरुष रिश्तेदारों से अपने अधिकारों की मांग करने लगी। घर एवं खेत में लगाए श्रम पर वे मूल्य लगाने लगी। पशु समूह की मालिकी स्त्रियों में बढने लगी। उत्तराधिकार में पत्नी होने के नाते वृद्धि होने लगी।

इस संशोधन से हमें दो पीढियों के स्त्री-पुरुष पर पुनर्वास की प्रक्रियाओं से निकलतें लाभ-हानि का विश्लेषण करने का मौका मिलता है। इस संशोधन से सामाजिक बदलाव की जटिलता की समझ भी मिलती है। नीतियों के हस्तक्षेप का निशाना स्त्रियाँ नहीं थी। **अतः** कई बार स्त्रियों को स्वायत्ता के कुछ क्षेत्र और नियंत्रण गवाँना पड़ा। अतः उन्हें जो लाभ मिले वह प्रासंगिक थे, योजनापूर्वक हस्तक्षेप का नतीजा नहीं थे।

सरदार सरोवर परियोजना (SSP) :

सरदार सरोवर परियोजना को, विश्व बैंक के श्री चरनिया ने, "सबसे दोषित परियोजनाओं में से एक," कहकर वर्णन किया है (Cernea, Forthcoming)। सरदार सरोवर परियोजना ज्यादातर नर्मदा घाटी में बसे आदिवासी समुदायों को विस्थापित करेगा। इनमें हैं, तडवी, वसावा, भील और भीलाला।

विस्थापन से इन समुदायों में प्रथागत लैंगिक असमानताएँ और गहरी बनी हैं। बांध के विरुद्ध आंदोलन की वजह से विस्थापन की प्रक्रिया पर काफी दबाव पडा हैं; ज्यादातर पुनर्वास समान्तर गति से नहीं चली। १९८५ तक गुजरात के १९ गावँ को १७५ स्थलों पर पुनर्वसित किया गया था (TISS, 1997 : 184-214)। इस संदर्भ में विस्थापन और पुनर्वास की प्रक्रिया से उभरते मुख्य लैंगिक मुद्दो को हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

नर्मदा घाटी के समुदायों के विभाजन से सामाजिक संसजन (cohesion) अस्त-व्यस्त हुआ है। इसका असर स्त्रियों पर पुरुषो की तुलना में ज्यादा हुआ है। परिवहन खर्च की वजह से बंधुता के ढांचो से दूरी हुई है; इससे स्त्रियों मे असुरक्षा और भय उत्पन्न हुआ है (Thukral 1996, Srivnivasan , 1997: Mehta, Forthcoming)। कुछ शास्त्रकारों ने यह भी पाया कि विस्थापित स्त्रियों के लिए एक बडी चिन्ता का विषय था अपनी विवाहित लडकियों से न मिल पाना (Thukral 1996: Hakim 1997)।

पुनर्वास से स्त्रियों के स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण पर भारी कटौती हुई है; आदिवासी समुदायों में स्त्रियों को जमीन के अधिकार नहीं है; (नर्मदा घाटी में ज्यादातर आदिवासियों को अतिक्रमण किसान माना जाता हैं) (Morse et al, 1992)। परन्तु आदिवासी स्त्रियों को उपयोग अधिकार और सार्वजनिक स्रोत पर नियंत्रण जरुर हैं (Mehta, Forthcoming,)।

जंगल-आधारित काम से स्त्रियों को स्वतंत्र आमदनी मिलती थी, जो पुनर्वसित होने पर नहीं मिलती। जंगल के अर्थतन्त्र में स्त्रियों की भूमिका की अवगणना हुई है। बालिग लड़कियाँ या विधवा स्त्रियों (जो मूल गाँव में जमीन पट्टा रखते थे) को मुआवजा नहीं मिला है (Bhatia 1997)। गुजरात सरकार की पुनर्वास नीति मानती हैं कि स्त्रियों के हित परिवार के साथ जुड़े हैं, इसीलिए इस नीति द्वारा सिर्फ पुरुषों और बालिग लड़को को जमीन मिली हैं। और अधिक, जंगल, नदी, जंगल उत्पादन, ईधन, घासचारा और सार्वजनिक संपत्ति सौत के नुकसान से पुनर्वास स्थलो में स्त्रियों को काफी परेशानी रहती है (Mehta, Forthcoming, Srinivasan 1997)।

दूसरी ओर टोकरी साजी, कुम्हारी और जडी-बुटियों की जानकारी जैसी कुशलताओं का पुनर्वास स्थलों पर उपयोग नहीं (CSS, 1997)। और अधिक, गुजरात सरकार द्वारा चलाए गए सिलाई और साबुन बनाने के प्रशिक्षण कार्यक्रमो में परवेठा जैसे पुनर्वास स्थलों पर बुझुर्ग स्त्रियाँ शामिल होने से इन्कार कर रहीं है (CSS 1997)। इसका एक मुख्य कारण है कि एसे कार्य आदिवासी स्त्रियों की जिन्दगी से ताल्लुक नहीं रखते। एसे प्रशिक्षण कार्यक्रम महिलाओं के काम के क्षेत्र प्रति संकुचित दृष्टिकोण रखतें हैं और जंगल अर्थतंत्र में उनके योगदान को बिलकुल नजरअंदाज करतें है।

पुनर्वास स्थलों पर खास प्रकार के खेती काम के बढ़ने से स्त्रियों को गतिशीलता में मूल गाँव की तुलना में कमी हुई है (Parasuraman 1993, Mehta, Forthcoming)। इसका एक कारण नए वातावरण में पुनःस्थापना भी है (Srinivisan 1997)। पुनर्वास स्थलों में सार्वजनिक क्षेत्र के लैंगिक आयोजन की वजह से स्त्रियों की असुरक्षा बढी है। बंधुता सहयोग के अभाव में इसका सामाजिक और पारिवारिक जिन्दगी पर असर हुआ है। पुनर्वास स्थलों के पास पहले से बसे गाँव और विस्थापित समुदायों के बीच, पुनर्वास में अमलीकरण की लापरवाही की वजह से तनाव काफी रहता है (Dreze et al, 1997); इससे हिंसा की कुछ घटनाएँ भी घटी है। शराब आसानी से मिलती है; जिससे घरेलु आमदनी और सुरक्षा में कमी हुई है (Thukral, 1996)।

आदिवासी गाँव में स्त्रियाँ घरेलु और खेती संबंधित निर्णय-प्रक्रिया में जुडी थीं (CSS, 1997)। बाजारु अर्थतंत्र (जिससे आदिवासी समुदाय कम परिचित है।) के कारण स्त्रियाँ घर और खेती में स्वायत्त नियंत्रण के क्षेत्रो में किनारे पर कर दी गई है। उ. त. पुनवार्स स्थलो पर स्त्रियाँ रोजगारी करने पर मजबूर हुई है। इसके साथ-साथ समान काम के लिए असमान वेतन स्वीकारने पर भी मजबूर हुई है। यांत्रिक साधनो से खेती उत्पादन परिष्कृत हुआ है, इससे स्त्रियाँ उत्पादन प्रक्रिया के परिधि में ही पाई जाती है (Parasuraman, 1993)।

कुछ पुनर्वास स्थलो में हेन्ड पम्प और चक्की से स्त्रियों का घरेलु बोज जरुर कम हुआ है (Parasuraman, 1993; Hakim 1997)। कुछ पुनर्वास स्थलो पर पानी खारा है जिसकी वजह से दाल पकाने में ज्यादा समय लगता है। और अधिक स्त्रियों का कहना है कि इस पानी की

वजह से उनके चमडे पर खरोच उत्पन्न होती है। वे कहती है कि नदी के साफ, बहता हुए पानी के जगह और कुछ नही ले सकता। एक महिला के शब्दो में, "पानी के लिए चाहे पहाड भी चडना पडे, रास्ते के अन्त में बहती नदी का साफ-सुथरा पानी हमेशा के लिए है। अगर मेहनत करने की तैयारी है, तो नदी तो हमेशा है। दूसरी चीजो के लिए भी.... घाटी हमारे लिए है। हमें तो सिर्फ जाकर उन्हें लेना है (Hakim, 1997)। ईंधन, और घासचारे की कमी से घरेलु बोझ बढता है (Bhatia, 1997: Mehta, Forthcoming, Srinivasan, 1997)।

फसल के बदलाव से जरुरी पोषण और पानी के अभाव से स्वास्थ्य पर असर हुआ हैं एसा मालूम पड़ता हैं (Parasuraman 1993)। कुछ आदिवासी गाँव में जाति-अनुपात गुजरात राज्य की तुलना में पुनर्वास के पहलें ज्यादा थी। परन्तु कुछ स्थलों पर शिशु मृत्यु संख्या बढ़ी है (Parasuraman,1993:17)। परवेठा में पाँच साल में कम से कम पाँच महिलाओं के सारे बच्चों की मृत्यु हुई है। परवेठा में पुनर्वास के पहले छ सालों में ३० प्रतिशत बच्चों की मुत्यु हुई हैं। पुनर्वास स्थलों मे प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव स्पष्ट हैं।

शायद इन्हीं कारणों से, मॉर्स कमिटी से बात करतें हुए, मध्य प्रदेश की कुछ पुनःवसित स्त्रियों ने बताया कि, "हम में से एक भी पुनर्वास स्थलों में जन्म नही देना चाहते। संभव हैं तो मूल गाँव में ही जन्म देंगे है (Morse et al 1992: 197)। इस समूह ने इस कमिटी को यह भी बताया कि औषधिय सहाय के लिए उन्हें कम से कम दो की.मि. चलना पडता था। कमिटी के रिपोर्ट के अनुसार लोंगों को इन स्वास्थ्य सेवाओं पर बहुत विश्वास नही था।

स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण :

सामाजिक ढांचे, जमीन, नदी, अन्न और जंगल हरेक समुदाय के लिए अत्यंत जरुरी स्रोत हैं। क्योंकि विस्थापित समुदायों में पुनर्वास के प्रायः लैंगिक संबंध स्त्रियों को बाहरी व्यवस्था से लेन-देन से परे रखते थे, राज्य ने पुनर्वास के तहत जो कदम उठाए, उससे इस सोच और व्यवहार दोनो को बल दिया। यह इस लिए हुआ क्योंकि राज्य ने दोनों उदाहरणों में, सिर्फ पुरूषों से समझौता किया।

करिबा बांध की चर्चा से स्पष्ट हैं कि जब लैंगिक भूमिकाओं में इस तरह से बदलाव आते है, तब स्त्रियों को काफी असूविधा होती हैं। ये सही हैं कि नई पीढ़ी की स्त्रियों ने बाजार से कुछ हासिल जरुर किया। परन्तु व्यापक संदर्भ में देखें तो स्त्रियों ने स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण गवाँया हैं। इसी तरह ब्राझिल में और भारत में SSP और अपर क्रिषणा परियोजनाओं में स्त्रियों को आर्थिक क्षेत्र ओर ईधन, घासचारा, सार्वजानिक संपत्ति में भारी नुकसान हुआ हैं।

करिबा बाँध में नीति इस मामले में स्पष्ट थी कि मुआवजे का वितरण जाति आधारित भेदभाव से नही होगा। इसके ठीक विपरित इस नीति अमलीकरण में पाया गया कि सिर्फ पुरुषों को मुआवजा दिया गया। इस परियोजना में जमीन के लिए मुआवजा नही दिया गया। SSP में भी स्त्रियों को जमीन का मालिक नहीं माना गया है।

यह भी सही हैं कि विस्थापित समूहों को मूल गाँव में बिजली, पानी, स्वास्थ और शिक्षण सेवा उपलब्ध नहीं थी। सैद्धान्तिक स्तर पर, पुनर्वास स्थालों में एसे स्रोत उपलब्ध हो सकते है और हुए भी हें। परन्तु लिंग के प्रति सहानुभूति रखने वाले व्यवस्थाओं के अभाव में यह सारे स्रोत स्त्रियों की पहुँच के बाहर हैं। गुजरात के पुनर्वास नीति समानता और लिंग पर भार नही देता। इसलिए इस नीति में शाला में बालिकाओं की भरती (जो कि पूरे राज्य में वैसे भी कम हैं) पर खास भार नहीं दिया गया हैं, ना ही नीति उस पर केन्द्रित है। हमारा अनुमान यह हैं कि पुनर्वास स्थलों में लडको की भरती बढी हैं, पर लडकियों की नहीं।

एसे ही, गुजरात कि स्त्रियों को पुनर्वास स्थलों पर आटा पिसाने की चक्कियों से फायदा जरूर हुआ है, पर व्यापक द्रष्टिकोण से पुनर्वास नीति ने विस्थापित समुदायो में लैगिक पहलुओं की बारीकियों को नजरअंदाज किया हैं। इसका नतीजा ये हुआ कि पुनर्वास स्थलों में घरेलू बोझ कम होने पर भी महिलाएँ संतुष्ट नहीं । लिंग के प्रति सहानुभूती रखनेवाली नीति से, (जो स्त्रियों को योजना और अमलीकरण के हर स्तर पर शामिल रखती) एसे दुःखद परिस्थितियों से बचा सकती हैं। लाभ और पहुँच में अगर स्त्रियों को बराबर का हिस्सा मिलना है, तो और अधिक चेतना जरूरी है।

सामाजिक और लैंगिक असर

ग्वेम्बे टोंगा समुदाय के उदाहरण में स्पष्ट हैं कि समुदाय की समाजिक ओर लैंगिक घटन पुरूष-प्रधान है। खास करके जमीन नियतन के संदर्भ में यह सही हैं। परन्तु पत्नियों का जमीन पर अधिकार था और वे अपने अन्न-भंडार भी रखती थी। कुछ हद तक उनका स्रोत पर नियंत्रण और स्वायत्तता बरकरार थी। जमीन मालिकी उन व्यक्तियों की थी (ज्यादातर पुरूष, पर स्त्री भी) जो जमीन की सफाई करवा सकते थे। पुनर्वास के पहले स्त्री-पुरूष दोनों जमीन की सफाई कराते थे। इससे दोनों के जमीन पर अधिकार बरकरार थे। पुनर्वास के बाद स्त्रियों के पास अतिरिक्त अन्न नहीं रहा, और वे जमीन की सफाई के लिए श्रमिकों का आयोजन नहीं कर पाई। नतीजा यह हुआ कि उन्हें जमीन खो देनी पडी। SSP के पुनर्वास स्थलों पर भी स्त्रियोंने उपयोग-अधिकार और जमीन पर नियंत्रण गवाँ दी। जब की खेतों में स्त्रियों का श्रमदान बढ़ा (भारत, ब्राझिल में), अपने श्रम पर उन्होनें नियंत्रण गवाँ दी।

स्त्रियों ने, जमीन पर किस तरह से अपना आधिपत्य खोया, यह ग्वम्बे टोंगा उदाहरण से स्पष्ट हैं। तलाकशूदा और विधवा स्त्रियाँ खासकर इस संदर्भ में असुरक्षित थी। जमीन के लिए स्त्री और पुरुष के बीच संघर्ष छीड गई, ओर एसी स्त्रियों को रास्ते से हटाने के लिए, पुरुष उनके लिए अयोग्य विवाह का आयोजन करने लगे। पुनर्वास के पहले महिला रिश्तेदारों का जमीन नियतन पर अधिकार थे। पुनर्वास के बाद, जमीन और जमीन की सफाई करने के लिए पैसे न होने से इस समुदाय के मूलभूत सामाजिक ढ़ाँचों में परिवर्तन हुआ।

करिबा की पुनर्वास स्थलों में बुझुर्ग स्त्रियों के नदी और रिश्तेदारों की बड़ी कमी महसूस होती थी। जवान स्त्रियों ने शिक्षण के अवसर का उपयोग किया जिससे विवाह बाजार में वृद्धि हुई और आर्थिक स्थिति को सुधारने के अवसर भी मिलने लगे। बढती सामाजिक ओर आर्थिक गतिशिलता से जवान महिलाएँ उत्पादन प्रक्रिया में अपने आप के लिए नई भूमिकाए बनाने लगी। इससे मूलभूत परिभाषाओं में भी फर्क हुआ। जवान महिलाओं को अपनी स्थिति सुधारने का मौका मिला, जो बुजुर्ग महिलाओं के लिए उपलब्ध नही था।

इसी तरह, SSP के पुनर्वास स्थलों में स्त्रियों का घरेलू बोझ का कम होना महत्वपूर्ण हैं। परन्तु विस्थापित स्त्रियाँ इसे फायदे के रुप में नहीं देख पाई। कुछ स्त्रियों का यह मानना था कि पुर्नवास स्थलों की परिस्थितियों से कई बहतर था नर्मदा घाटी में काम का बोझ। अपने पूर्वजी निवास में जंगल और नदी की उपस्थिति की तुलना में, विस्थापन से नुकसान ही हुआ। अतः वह मानते हैं कि विस्थापन से पीड़ित होने से हैं कई गुना बहतर घाटी में काम का बोझ ढोना। इसका एक दूसरा अर्थघटन यह भी हो सकता हैं कि स्त्रियाँ अपने पूर्वजों के निवास स्थलों में ही सुविधाए चाहती है न की पुर्नवास स्थल जैसे बिलकुल ही नई जगहों में।

उपरोक्त उदाहरणों में विस्थापन का ओर एक गंभीर परिणाम थाः पारिवारिक हिंसा का बढ़ना। पुरुषों की निराशा और शराब का आसानी से मिलने से स्त्रियों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर सीधा और गहरा असर हुआ। जब समुदाय अपने आप को निराशाजनक और नई परिस्थितियो में पाता हैं, तब सबसे निर्बल सभ्यों पर ही जुल्म किया जाता हैं। इससे इन सभ्यों के सुरक्षित जीवन जीने के मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन होता हैं। नीति अक्सर एसे हानिकारक परिस्थितियों और मानव अधिकारों के भंग को नजरअंदाज कर देती हैं। सामाजिक ढ़ांचों के अभाव में स्त्रियाँ अपनी सुरक्षा के लिए ज्यादातर कुछ कर नहीं पाती।

लैंगिक संबंधो में बदलाव

करिबा बांध के उदाहरण में लैंगिक संबंधो में बदलाव काफी साफ नजर आता है। पुनर्वास के बाद निर्णय-प्रक्रिया में स्त्रियों का स्थान बदला है। घरेलू और समुदाय-संबंधित निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता रखती हुई स्त्रियों को पुनर्वास के बाद इसमें कोई स्थान नहीं रहा। इसका दोष पुरुष-प्रधान नीतियों को देना पड़ेगा क्योंकि वे सिर्फ पुरुषों को परिवार और समुदाय का मुखिया की हैसियत से पहचानते है। अतः स्त्रियों के सामाजिक दर्जे में फर्क हुआ। और अधिक, कुशलता बढाने के कार्यक्रम और अन्य सेवाओं के लिए सिर्फ पुरुषों को ही उचित माना गया।

इस तरह गुजरात के आदिवासी स्त्रियों का परिवार एवं जमीन संबंधित निर्णय-प्रक्रिया में सहभागिता की भूमिका पुनर्वास के बाद बदल गई। अधिकारीयों ने उनके साथ बातचीत करना जरुरी ही नहीं समझा।

सामाजिक सहयोग के ढांचो के विघटन, स्रोत तक पहुँच ओर नियंत्रण के कम होने से और आर्थिक अवसर के घटने से स्त्रियाँ अपनी स्वायत्ता गवाँती ही है। अतः पुनर्वास के पन्द्रह साल के बाद भी ग्वम्बे टोंग स्त्रियाँ मूल गाँव वापस जाने का सपना देखती है; उन्हें आशा है कि बांध एक दिन टूट जाएगा और जमीन मुक्त हो जाएगी (Colson, 1999)। राज्य द्वारा हिंसा में भी स्त्रियाँ अपने आप को असुरक्षित पाती है।

संक्षिप्त में, लैंगिक असरों की जांच बारीकी से करने पर ही समुदायो पर उसका असर स्पष्ट होगा। इससे परिवर्तनका सामना करने की सामुहिक क्षमता के बारे में जानकारी मिल सकती है और अधिक, लैंगिक विश्लेषण ही नकारात्मक प्रक्रियाओं को बदलने के रास्तें बता सकती है।

आदेशित क्षेत्र (कमॉन्ड)

बडे बांध आदेशित क्षेत्र के निवासियों के लिए बनाए जाते हैं। कहा जाता हे कि बड़े बांध से गाँव और शहर में बिजली और पानी के अनेक फायदें है; जिस की तुलना में बांध के उपरवास, निचेवास और डूब क्षेत्र में होते नकारात्मक असर कुछ भी नहीं। बड़े बांध से शहरी क्षेत्रों में बिजली और परिवहन सेवाओं का फायदा जरुर होता हैं। माना जाता है कि सिंचाई से अन्न सुरक्षा बढ़ती हैं और गरीबी कम होती हैं।

लिंग के संदर्भ में क्या अलग-अलग समूहों में लाभों का वितरण समान है ? आगे की चर्चा में हम एसे सवालों के जवाब देने की कोशिश करेंगें। पानी और बिजली के वितरण के संदर्भ में लिंग संबंधित जानकारी न होने की वजह से हमारा काम और भी कठिन हो जाता है। हम सिंचाई का विश्लेषण लिंग के दृष्टि से करते हैं; इसके ग्रामीण और शहरी विस्तारों में बड़े बांध के लाभों के संदर्भ में हम समानता और वितरण के सवाल उठातें हैं।

सिंचाई

खेत उत्पादन बढ़ाने के लिए, जीवीका के साधन और अन्न **सुरक्षा** बढ़ाने के लिए, सिंचाई योजना अति आवश्यक समझे जाते है (Chambers1988)। दूसरी और, उर्ची वित्तिय लागत, विस्थापन, जमीन की डूब, पर्यावरणीय परिणामों, कम कार्यशीलता के लिए सिंचाई योजनाओं को बूरा माना जाता है। ये संभव हें कि बिजली और सिंचाई के लाभ से नकारात्मक असर शायद कम हो जाए। परंतु इन लाभों का वितरण ग्रामीण विस्तारों में शहरी विस्तारों की तुलना में कम हुआ हैं।

संशोधन यह भी संकेत देता है की सिंचित खेती के लाभों के वितरण में असमानता हैं (cf Shiva,1989, Dharmadhikary, 1998, Van Koppen 1999, Vaidyanathan 1994)। स्थान जैसे कारक को देखते हैं तो साफ है कि नहर के अन्त में आनेवाले गाँव और शहर को

कम फायदा हैं। इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि लाभ तक पहुँच जमीन और पानी के अधिकार के साथ जुड़े है। गरीब वर्ग, खास करके गरीब स्त्रियों का पानी और जमीन पर अधिकार या तो कम है, या बिलकुल नहीं। उ. त. भारत मे बड़े किसानो की सिंचाई तक पहुँच छोटे किसानो से ज्यादा हैं, और तेजी से बढ़ भी रही है (Vaidyanathan,1994)। भूमिहीन किसानो, (जिसमे ज्यादातर गरीब हैं) को सिंचाई के सीधे लाभ नहीं मिलते; हालाँकि अप्रयत्क्ष रूप में फायदा हुआ हैं, जैसे कि सिंचिंत खेतों में रोजगारी। रोजगारी के अवसर बढने के बावजूद, सिर्फ इससे शहरों में सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता। गरीब और संपन्न वर्ग, के बीच यथापूर्व स्थिति अवधि व्यवस्था से दृढ़ तरीके से बनी रहती हैं।

सिंचित खेती मौजूदा सामाजिक प्रथा और अवधि व्यवस्था पर निर्भर हैं। जहाँ जमीन और पानी के अधिकार विभेदिय है (उ.त. दक्षिण एशिया, जहाँ जमीन सुधार और जमीन उच्चतम सीमा संबंधित कानून से खास फर्क नही पडा) वहाँ सिंचित खेती के लाभ भी विभेदिय होंगें (cl. Mehta 1997)।

सिंचाई व्यवस्था में लिंगभेद

सिंचाई पर उपलब्ध साहित्य में समाज और समानता की चिन्ता व्यक्त कि गई हैं। परंतु कुछ शास्त्रकारों को छोडकर (Zwarteveen 1997 ; Van Koppen 1999) ज्यादातर ये पाया जाता हें की स्त्रियों को पानी का उपयोग करनेवालों की हेसियत से नहीं देखा जाता है। सिंचाई व्यवस्था में ज्यादातर पुरुषों को ही पानी इस्तमाल करनेवाले माना जाता हैं। इसके बावजूद की काफी बड़े पैमाने पर जाहिर हो रहा हैं कि स्त्रियाँ कार्यशील किसान थी और हैं (Mehra & Esim 1999:6)। स्त्री और पानी के बीच संबंध को ज्यादातर घरेलू क्षेत्र से ही जोड़ा जाता हैं। एसे कई उदाहरण हैं जिसमें स्त्रीयों के पास पानी पर व्यक्तिगत अधिकार हैं। जैसे की श्रीलंका की स्त्रियाँ जिन्हों ने सिंचाई करने लायक जमीन व्यक्तिगत खेती के लिए किराए पर ली (Zwarteveen, 1997)।

बूराकिना फासो में लिंग ओर चावल घाटी सुधार

वॅन कोपन एक एसी सिंचाई योजना का वर्णन करतें हैं जिसका उद्देश्य था बूरकिना फासो में चावल घाटी का उत्पादन बढ़ाना। शुरु में एजन्सी ने सिर्फ पुरुष प्रधानों से ही प्रत्यायन किया और परिवार के मुख्या (जो समझा गया कि पुरुष ही है) को अधिकार दिया। इस परियोजना में परिवार को "ब्लेक बोक्स" माना गया जिसमें पुरुष और स्त्री के हितों और जरुरतो को एक ही माना गया। हकीकत यह थी कि स्त्रियाँ घाटी में चावल के खेतों पर नियंत्रण रखती थी। पुरुषों की उत्पादन उपरी विस्तारों तक सीमित थी, जो इस परियोजना के अंतर्गत नहीं आते थे। स्त्रियाँ केवल घाटी में चावल के उत्पादन पर श्रम लगाती थी, पर जमीन पर अधिकार और उत्पादन पर नियंत्रण पुरुषों की तुलना में, ज्यादा रखतीं थी।

हालाँकि परियोजना के उद्देश्य स्त्रियों कि आमदनी बढ़ाने के थे, पर शुरुआती दिनों में स्थानीय स्त्री या पुरुष की सहभागिता नही थी। मूल दावेदारों को पूछे बिना एजन्सी ने पानी पर अधिकार का स्वामीत्वहरण कर दिया। मूल दावेदार थीं महिलाएँ जिनका परियोजना क्षेत्र के स्रौत पर वास्तविक नियंत्रण था। अेजन्सी ने इस तरह स्त्री मुख्याँओं की भूमिका को नजरअंदाज कर दिया और पुरुषों को घाटी की जमीन पर नियंत्रण दिया जिससे हकीकत से बिलकुल अलग परिस्थिति बनी।

कई सालों के बाद सहभागिता पर निर्धारित मोडल शुरु किया गया। फिल्ड स्टाफ और स्थानिय लोंगों ने मिलकर घाटी की जमीन नियत्रंण के बारे में नई सोच विकसाई। स्त्री और पुरुष दोनों इस बात पे सहमत हुए कि स्त्रियों के अधिकारों को सुरक्षित रखना जरुरी है। परियोजना धीरे-धीरे समानता के ध्येय तक पहुँच ने लगी। पुरुषों ने परियोजना क्षेत्र में खेती की रुचि नहीं दिखाई। एसा न हुआ होता तो परियोजना से समुदाय में मौजूद समान्तर संबंध उलट कर नई असमान लैंगिक संबंधो का निर्माण होता (Source : Van Koppen n.d. and 1999)।

जमीन और पानी पर स्त्रियों के अधिकार के प्रति लैंगिक भेदभाव और रूढ़िचुस्त विचारधाराएँ, ग्रामीण क्षेत्रों में समानता के ध्येय तक पहुँचने में अवरोध हैं (cf. Agarwal, 1996)। परंतु, अमलीकरण अधिकारीयों के भेदभावपूर्ण वर्तन और विचार से कई सिंचाई करने वाले समुदायों में मौजूद लैगिंक असमानताओं को बढ़ावा मिलता हैं। बूरकिना फासो के उदाहरण से स्पष्ट होता है

कि अमलीकरण अधिकारियों को कई बार समानता और अधिकारों की स्थानिय मान्यताओं की जानकारी नहीं होती।

सिंचाई अधिकारी ज्यादातर तकनिकी पहलूओं से चिंतीत रहतें हैं। एसी परियोजनाओं के सामाजिक और लैंगिक मूल्यांकन करने के लिए उनमें कुशलता नहीं होती। आदर्श परिस्थिति यही है कि परियोजना अमलीकरण तक पहुँचे उसके पहले ही एसा मूल्यांकन हो जाना चाहिए। बूरकिना फासो के उदाहरण से साफ होता हैं की कई बार स्रौत पर अधिकारों की योजना मौजूदा स्थानीय अधिकारों और आयोजन और उनके लैंगिक तत्त्वों को देखे बगैर ही किया जाता है।

संपत्ति पर अधिकार

पानी ओर जमीन जैसे संपत्ति पर अधिकार दुनियाभर में ज्यादातर लैंगिक स्तर पर असमान है। योजना निर्माण करनेवाले अधिकारी और एजन्सी अक्सर मानते है कि संपत्ति अधिकार स्थायी और औपचारिक है। परन्तु अधिकार गतिशील और अल्पकालिन भी होते है। यह खास करके पानी के संदर्भ में सही है, क्योंकि रसद अक्सर समय ओर जगह पर निर्धारित होते है (Meinzen-Dick et al 1997)। अधिकार अनौपचारिक भी हो सकतें है । स्त्रियों के अधिकार अक्सर अनौपचारिक सामाजिक योजनाओं में पाए जाते हैं, जिनके बारे में अधिकारी अक्सर अनजान होते है।

यह खास करके द्विपक्षीय या मातृवंशीय समुदायों के लिए सही हैं। उ. त. श्रीलंका के महाविली परियोजना में जमीन पतियों के नाम पर दी गई, जिनको परिवार कें मूखिया माना गया (Agarwal 1996 ; 290)। योजना ने परिवारों को उत्तराधिकार चूनने की भी छूट दी, जो ज्यादातर लड़के थे । इसमे समुदाय में प्रचलित द्विपक्षीय उत्तराधिकार के नियमों को क्षति पहुँची जिस के तहत स्त्रियाँ भी जमीन की सह-मालिकी और उस पर नियंत्रण के अधिकार रखती थी। महावेली परियोजना में तलाकशूदा स्त्रियों को जमीन नहीं दी गई जिससे वे पुरुषो पर निर्भर हो गई। ८६ प्रतिशत जमीन नियतन पुरुषों में ही की गई। जिन १६ स्त्रियों को जमीन दी गई, उनमें से केवल दो (एक विधवा स्त्री और एक पति से उलग हुई) परियोजना क्षेत्र में रहतीं थीं ओर खुद के खेत पर काम करती थी (Schrijvers in Agarwal 1996 : 290)।

अतः प्रशासन और कानूनी व्यवस्था के पूर्वाग्रहों के कारण अनौपचारिक संस्थाओं में मौजूद स्त्रियों के अधिकारों को क्षति पहुँच सकती हैं, और कमजोर सामाजिक परिस्थितियों में स्त्रियों को हानि पहुँच सकती हैं। इससे तलाकशूदा स्त्रीयों और स्त्रियाँ द्धारा चलाए जानेवाले परिवारों को भी हानि हो सकती हैं।

कुल मिलाकर, योजना निर्माण करने वालों के खुद के पूर्वाग्रहो और प्रचलित स्थानीय संपत्ति नियमों की जानकारी नहीं होने से अक्सर स्त्रियां सिंचाई परियोजनाओं के सीधे लाभार्थी होने से व्यवस्थित रूप से वर्जित की जाती हैं।

श्रम विभाजन में परिवर्तन

हमारा विश्लेषण भारतीय अनुभव पर आधारित हैं जिससे स्पष्ट होता है कि शुष्क भूमि जब सिंचित खेती में परिवर्तित होती हैं, तब लिंग-आधारित खेती कार्यो के श्रम विभाजन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता है। बाजारु खेती और हरी क्रांति के तकनिकों पर आधारित खेती से स्त्रियाँ खेती उत्पादक की भूमिका से विस्थापित हो जाती है। वर्षा पर आधारित खेती और जीवीका खेती में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं के बारे में काफी दस्तावेजीकरण हुआ हैं। उ. त. स्त्रियाँ बीज-उत्पादन पर नियंत्रण रखती हैं और बटोरने/बेचने के मामलों में खुद निर्णय लेती हैं।

बाजारु खेती के लिए पूंजी की जरूरत होती हैं जो स्त्रियों के पास ज्यादातर नहीं होती। और अधिक, खेती के यन्त्रीकरण से स्त्रियाँ पारम्परिक व्यवसायों से विस्थापित हो जाती हैं। अतः ट्रक्टरों के आगमन से स्त्रियाँ खेती उत्पादन से बाहर निकाली जाती हैं। उ. त. गुजरात में, जो कि भारत के सबसे औधौगिक राज्यों में से एक हे, १९९७-१९८१ में महिला खेत श्रमीकों में पुरुष खेत श्रमीकों की तुलना में १८ प्रतिशत बढ़ावा हुआ है (Srinivasan 1999) ज्यादातर स्त्रियाँ दूसरों के खेतों में मजदूरी करती है।

गरीबी और अन्न सुरक्षा के प्रत्यक्ष लैंगिक लक्ष्यार्थ है। खेती उत्पादन के सहयोग के किए कार्यक्रम, जैसे कि वित्तीय सुविधा, बीज के लिए ऋण और कुशलता बढ़ाने के कार्यक्रम स्त्रियों के लिए शायद ही बनाए जाते हैं। भारत जैसे देश मे ढांचागत सहयोग खेती उत्पादन के लिए अति आवश्यक है। परंतु इनका निर्माण और उपयोग पुरूषों द्वारा ही होता हैं। ग्रामीण भारत में एक तिहाई परिवार एसे है जिनको स्त्रियाँ चलाती हैं (Agarwal 1996)। परंतु भारत में ढ़ांचागत सहयोग कार्यक्रम स्त्रियों को किसानों की भूमिका में नहीं देखते (Srinivasan, 1999; National Commission For Women and Women in the Informal Sector, 1988)।

हिमाचल प्रदेश में किया गया एक अभ्यास इस नतीजे पर पहुँचता हैं की खेती काम के ६१ प्रतिशत कार्य स्त्रियाँ करती हैं। परंतु इस काम को ज्यादातर गिना नहीं जाता (cited in Shiva, 1989:109) कुछ क्षेत्रों में फसल के प्रकार और बीज के बारे में स्त्रियाँ पुरुषों से ज्यादा जानकारी रखती है (Agarwal 1996; 137)। खासकर नीची जातियों में निर्णय-प्रक्रिया में स्त्रियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती हैं।

सिंचित बाजारु खेती में शायद स्त्रियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं नीभा पाती है। सिंचाई के नहर और पम्प चलानेवाले पुरूष होते हैं जिससे पानी पर उन्हीं का नियंत्रण होता है। लेकिन श्रम-विभाजन में स्त्रियाँ फसल काटनें और छांटने के काम में फँसी रहती हैं। अक्सर स्त्रियों पर काम का बोझ बढ़ता हैं । परंतु इसके साथ निर्णय-प्रक्रिया में सत्ता नहीं बढ़ती (See Mehta 1998)।

संपन्न परिवारों में स्त्रियों के कार्य अक्सर घर और परिवार तक सीमित रहतें हैं। इसका एक कारण यह हो सकता हें की एसे परिवार अब खेत-मजदूरों की सेवाओं को खरीदने की क्षमता रखते हें। इससे खेतों में स्त्रियों का काम अनावश्यक हो जाता हैं। एसे परिवारों में स्त्रियाँ सक्रिय उत्पादक से उपभोगता बन कर रह जाती हैं। अगर इससे काम का बोझ हलका हो जाय तो वो अपने आप में बूरी बात नहीं हैं। परंतु इससे स्त्रियाँ खेती उत्पाादन में निष्क्रिय हो जाती है और उनके आर्थिक कार्य घटते है।

गरीब परिवारों में प्राथमिक खेती करने वाले से (जिससे जमीन तक सीधी पहुँच होती हैं) स्त्रियाँ खेत मजदूर बन जाती है। उ.त. १९६१-८१ में भारत में स्त्रियाँ खेत मजदूरो की संख्या २५.६ प्रतिशत से ४९.६ प्रतिशत हो गई, यानी कि दुगनी हो गई (Agarwal 1988)। इसका मतबल है की खेती में स्त्रियाँ को स्वायत्तता भी कम हो जाती है।

कुछ किस्सों में पाया जाता है कि स्वतंत्र आमदनी और रोजगार के अवसर से परिवार में स्त्रियों को इज्जत और समझौता करने को ताकत बढ़ाती हैं। परंतु स्त्रियों को कम वेतन भी मिल सकता है जिससे जरूरी नहीं की लैंगिक पदानुक्रम में कोई बदलाव आए (cf Singh, 1999)। ज्यादातर ग्रामीण अर्थतन्त्र में सिंचित खेती से स्त्रियों पर काम का बोझ बढ़ता है और परिणाम मिला-जूला होता है।

बांध के आदेशित क्षेत्र में अक्सर खेती उधोग फैलतें है, जिसका लैंगिक संबंधो पर गहरा असर होता है। कोन्ट्रेक्ट पद्धति की उत्पादन प्रथा से खेती उत्पादन का झुकाव निर्यात के लिए फसल उत्पादन और बाजारु फसल के तरफ हो जाता है। इससे खाद्य चीज-वस्तु और आम उत्पादन के दाम बढ़ जाते है, (Singh, 1999)। कई बार व्यवसाय प्रतिष्ठा सम्पन्न क्षेत्रों पर ज्यादा ध्यान देते हैं जिससे क्षेत्रीय अंतर ओर बढ़ सकता है। कुल मिलाकर जब की स्त्रियाँ पुरूषों की तरह उपभोगता बन सकती है, उससे सिंचाई में उनके शामिल होने से लैंगिक समानता या सामाजिक समानता बढ़ती नहीं।

बदलते सामाजिक संबंध

सिंचाई से खेती पर निर्भर समुदायों के उत्पादन प्रथा में जो परिवर्तन आते है, उससे परियोजना के क्षेत्रों के सामाजिक संबंधो पर गहरा असर होता हैं। ग्रामीण क्षेत्र सालभर हरे रहेते है जो अधिक उत्पादन का संकेत देता हैं। क्या समृद्धि सामाजिक कीमत पर आती है ? भारतीय संदर्भ में कुछ उदाहरण से इन सवालों के जवाब ढूंढते हैं।

सम्पत्ति के बढ़ने से लैंगिक असमानता नहीं जाती। कई असमानताएँ बढ़ती भी हैं। पश्चिम भारत के एक प्रदेश, कच्छ में महिला संगठनो ने पाया है की जिन क्षेत्रों में यकायक समृद्धि हुई है, वहाँ जवान विवाहित महिलाओं के दहेज संबंधित मौत और खुदखुशी बढ़ी है। आहिर समुदाय जिसमें आम तौर पर दूसरी जातियों की तुलना में काफी लैंगिक समानता पाई जाती है, इसका एक उदाहरण हैं। पिछले कुछ सालों में एक सिंचाई योजना से पानी मिलने से कुछ गाँव में आर्थिक समृद्धि बढ़ी हैं। इसके साथ जवान महिलाओं में खुदखुशी के प्रसंग भी बढे है (Mehta 1998)।

आर्थिक समृद्धि का समान लैंगिक वितरण नही होता। जातियों के बीच समाजिक भेदभाव लैंगिक परिभाषाओं को ओर दृढ़ बना सकतें है। लिंग-आधारित पहचान स्त्रियों के घरेलू और सामाजिक भूमिकाओं के बारे मे दृढ़ लैंगिक पूर्वानुमान पर निर्धारित होते है। जब क्षेत्रीय समृद्धि अचानक बढ़ती है तब समुदायों के बीच और उनके भीतर सामाजिक दबाव भी बढ़ता है। ज्यादा से ज्यादा उपभोग और धन प्राप्त करने का दबाव काफी रहता है। ऐसी प्रक्रियाओं की असर लैंगिक एवं सामाजिक संबंधो पर होती है। कच्छ की आहिर स्त्रियों के सदर्भ में यह संभव हैं कि बढ़ती आर्थिक गतिशीलता जातिय संबंधो में बदलाव के साथ जुडी हुई है। इस समृद्धि से उत्पन्न दबाव झेलने के लिए स्त्रियों को निशाना बनाया जाता है। अतः दहेज की मांग बढ़ने लगती हैं। क्योंकि नई परिस्थिति में पैसों की जरुरत तीव्र हो जाती है।

पंजाब, जहाँ भाकरा नांगल बांध है, और जो दुनियाभर में हरि क्रान्ति के लिए मशहूर है, एक एसा राज्य है जहाँ दहेज संबंधित मौत के प्रसंग देशभर में सबसे ज्यादा है। आर्थिक विकास और खेती उत्पादन में बढ़ौती के बावजूद, बीना अग्रवाल का कहना है, "……इन्हीं क्षेत्रों में स्त्रियों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार ज्यादा प्रचलित है। यह एतिहासिक रुप से और पीछले कुछ सालों के लिए सही है (cited in Shiva 1989 : 118)। "बाजार के लिए अन्न उत्पादन के बढ़ने से परिवार में लिंगभेद खत्म नहीं होता। शीवा द्वारा लुधियाना, पंजाब में कि गई एक अभ्यास के बारे में जीक्र किया गया है। इसके मुताबिक एक ही सामाजिक-आर्थिक स्तर के समुदायों में लड़को की तूलना में लडकियाँ कुपोषण का शिकार ज्यादा बनती है (१९८९ : ११७)। संक्षिप्त में, सिंचाई से होते सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन से स्त्री ओर पुरुष के बीच सामाजिक संबंधो में सुधार होना अनिवार्य नहीं है, कई बार असमानताएँ बढ़ती है।

सिंचाई और समानता

यह कहा जा सकता हैं कि एसे नकारात्मक सामाजिक परिवर्तन मौजूदा सामाजिक असमानताओं से उभरते हैं, न की बांध संबंधित विकास से। हरेक समुदाय के अपने लैंगिक पूर्वाग्रह और असमानताएँ हैं। परन्तु हमारी चर्चा से स्पष्ट है कि बांध और सिंचाई जैसे हस्तक्षेप न केवल मौजूदा असमानताओं को बल देतें हैं पर उन्हीं पर बनाए जाते है। यन्त्र लिंग के प्रति तटस्थ या बिन राजनैतिक नहीं होता। न तो यन्त्र एक सामाजिक शून्य में काम करता हैं। यन्त्र अक्सर सामाजिक असमानताओं का प्रतिबिम्ब होते हैं।

बडे बांध के निर्माता अक्सर उनके सामाजिक परिणामों को देखते ही नहीं है। उ.त. स्त्रियों के श्रम पर कीमत लगाना मुश्किल है, क्योंकि सरकारी दस्तावेज में उनका जीक्र ही नहीं होता। (कुछ नारीवादी संगठन अब उस श्रम पर कीमत लगाने का प्रयत्न कर रहें है।) क्या परियोजना क्षेत्र में बढ़ती पारिवारिक हिंसा "हानि" के रुप में गीनी जाएगी ? इन सारी मुसिबतों के अलावा, उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि सिंचाई के लाभ या हानि का वितरण समान नहीं होता और स्त्रियों में तो बिलकुल ही नहीं।

सिंचाई में लैंगिक असमानता दूर करना मुश्किल रहेगा। इस के लिए जरुरी है स्रोतों का पुनः वितरण, संपत्ति अधिकार की परिभाषा बदलने के लिए और अमलीकरण अधिकारीयों की तरफ से स्थानीय लोंगो (खास करके पुरुष मुखिाओं) के विरोध सहन करने कि निष्ठा।

अक्सर परियोजना के समानता के प्रति उद्देश्य मुखियाओं के विरोध से उल्टा जा सकता है। योजना के निर्माता आम तौर पर समुदाय में तनाव छेड़ना नहीं चाहते, इससे स्पष्ट जाहिर असमानताओं को भी नजरअंदाज किया जा सकता है। कारने (१९८८), जिन्होंने गाम्बिया में विस्तृत काम किया है, विकास परियोजनाओं में समानता के उद्देश्य का पालन करने में अवरोधों के बारे में लिखते हैं, "..... ग्रामीण क्षेत्र में मौजूद सामाजिक और आर्थिक संधियों को बनाए रखने के लिए ताकतवर सैद्धान्तिक परिबल काम करते हैं। नीति बनाने वाले ओर वित्तीय सहाय देने वाली संस्थाओं के लिए समानता के ध्येय को अमल करने के लिए सही चुनौती इस संभावना को ताकत देने के लिए ढ़ांचागत व्यवस्था बनने में है....." (Carney 1994 :184)।

गाम्बिया में सिंचाई योजना

१९८० के दशक की शुरुआत में एक सिंचाई योजना के तहत गाम्बिया में दुगुनी सिंचित चावल की फसल का उत्पादन बढ़ाने का प्रयास किया गया। शुरु की कुछ योजना पूरी तरह से असफल रहीं, क्योंकि योजना के निर्माताओं ने अधिकार और जिम्मेदारियों की स्थानीय "मनदिनका" व्यवस्था को नजरअंदाज कर दिया। इस व्यवस्था के अनुसार पुरुष और स्त्री दोनों अन्न उत्पादन में सहभागी थे, जिससे स्त्रियाँ अपने श्रम पर पतियों की मांग से मुक्त थी। योजनाकारों ने पुरुषों पर ही ध्यान केन्द्रित किया और उनको ही सिंचित जमीन पर खेती करने का अधिकार दिया। इसके साथे उनको उधार और अन्य सेवा दी गई थी। दूसरों के खेतों पर काम करने के बजाय (जहाँ उनके अधिकार नहीं थे) स्त्रियों ने अपनी स्वतंत्रता बनाए रखना पसन्द किया और खुद, चावल उगाती रही। इससे श्रमिकों की कमी हुई और पुरुषों को अपनी पत्नियों को भी सिंचित जमीन पर काम करने के लिए पैसे देने पड़े।

१९८० में योजना के निर्माताओं की लैंगिक समानता के प्रति सोच बढ़ी और उन्हों ने स्त्रियों को नए सिंचित खेतों पर अधिकार दिए। जब की परियोजना से आमदनी बढ़ी, ८६ प्रतिशत खेत पुरूषों के नाम पर थे। इस क्षेत्र में जमीन पट्टो के मामले में स्त्रियाँ और पुरुषों के बीच तनाव का इतिहास था। यह इसलिए था क्योंकि सरकार ने पहले कुछ प्रथानुसार योजनाओं और जमीन पर अधिकारों को क्षय किया था।

संशोधन का संकेत था कि वित्तीय सहाय देने वाली संस्था (IFAD) ने पुरुषों के विरोध का सामना नहीं किया, बल्कि उनके लिंग हितों को समानता के ध्येय को उलटाने दिया। अत : इसके बावजूद कि जमीन स्त्रियों के नाम पर थी। सिंचित जमीन को दोनो के नाम पर दिया गया। जिससे स्त्रियों ने अपनी ही जमीन पर व्यक्तिगत अधिकार खो दिया। जमीन की रजिस्ट्री और नियंत्रण के बीच औपचारिक फासला रखकर योजना चलाने वालें पुरुषों के विरोध में फँस गए। पुरुष संयुक्त शिर्षक, महिला "मालिक" के साथ सूचित की गई। इससे जमीन पर संयुक्त अधिकार मिले। नतीजा यह हुआ कि सिंचित फसल पर पुरुषों का वास्तविक नियंत्रण रहा।

संशोधन सुझाता है, जहाँ स्त्रियाँ इससे गरीब तो नहीं हुई, अपनी जरुरतों के लिए वे पुरुषों पर निर्भर हो गई। इससे उनकी स्वायत्तता का क्षय हुआ। कोन्ट्राक्ट खेती से पारिवारिक संबंधो पर भारी असर हुआ। कुल मिलाकर स्त्रियों को अधिकार न देकर, संयुक्त अधिकार देकर, योजना ने स्त्रियों के मुफ्त श्रम का उपयोग किया, जो कोन्ट्राक्ट खेती के लिए जरुरी था। अतः सैद्धान्तिक पूर्वाग्रहों, अमलदारी समीचीनता, स्थानीय आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के साथ आने से परियोजना के लैंगिक समानता के ध्येय को उल्टाया गया।

आदेशित क्षेत्रो में पानी का वितरण

शहरों में पानी और उर्जा के इस्तमाल में लिंग संबंधित प्रत्यक्ष माहिती के अभाव से समानता के मुद्दों पर हमारा विश्लेषण सिमित रहेगा। परंतु शहरी क्षेत्र में कुछ टिप्पणियों की जरूरत हैं।

बांध के सुप्रकट उपभोगता शहर के निवासी है। शहर में बसनेवालें स्त्री-पुरुष को उंची कीमत पर दूर के नदी बेसीन से लाए गये बिजली, परिवहन और पानी के लाभ मिलतें हैं। परंतु शहरी समुदाय सजातीय नहीं हैं। झौंपडपट्टी विस्तारों के निवासी और कम आमदनी वाले परिवार बहुत कम पानी का इस्तमाल करते है, खास कर के सम्पन्न परिवारों की तुलना में। अक्सर एसे विस्तारों में बसे लोगों को मूलभूत स्वास्थ के लिए जरुरी पानी भी नहीं मिलता। अतः झौंपडपट्टी की गरीब स्त्रियाँ अपने परिवार के लिए साफ पानी के लिए संधर्ष करती हैं, जबकी अमीर स्त्रीयों को सीधे नल से पानी मिल जाता हैं।

दुनियाभर में बांधो से रुके हुए पानी के बावजूद 1 billion लोंगों को साफ पानी नहीं मिलता और 3 billion को स्वास्थ सुरक्षा का अभाव है जिससे स्वास्थ और मानवीय जनकल्याण पर भारी परिणाम होता है। उ.त. पश्चिमी भारत में सुखाग्रस्त इलाकों में ग्रामवासी साधारण रूप में १० लि. पानी प्रतिदिन इस्तमाल करतें हैं; इसके विपरित अमरिका का एक नागरिक करीब ३०० लि. पानी इस्तमाल करता है। शहरी पानी ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों से लाया जाता है; जो अक्सर ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को अपने हिस्से के पानी या बिजली से वंचित रखके या बड़े बांधो के लिए लोगों को विस्थापित करके लिया जाता है। बड़े बांध के लाभ अक्सर शहरी विस्तारों या फिर राजनैतिक ताकत रखने वालो के लिए होतें है। अत : व्यापक राजनैतिक अर्थव्यवस्था से संबंधित मुद्दे ये निश्चित करतें है कि बांधो से किसकी जीत या हार होनी है।

गुजरातः भारत में बांधो कि राजनैतिक अर्थव्यवस्था

गुजरात राज्य भारत के सबसे औधोगिक राज्यों में से है। पिछले ३५ वर्षो में यहाँ कई बांध बने है, जिसमें कई विश्व बैंक के वित्तीय सहाय से बने है। परन्तु ज्यादातर किस्सों में योजनाकार द्वारा कल्पित फसल उगाई नहीं गई। खाद्य फसल के बदले गन्ना, तम्बाकू और कपास जैसी औधौगिक फसल का प्राधान्य हुआ। लाभों का वितरण भी असमान रहा। डूब गरीब आदिवासी इलाकों में रहा है; लाभ और सिंचाई मैदानी इलाकों को गए हैं जहाँ सम्पन्न जमीनदारी समुदाय बसतें हैं जिनका राज्य में राजनैतिक बल है। विस्थापित लोगों को पुनर्वास असंतोषकारक दिखाते हुए काफी बडी मात्रा में साहित्य उपलब्ध हैं। उकाई और मही-कडाना परियोजना के विस्थापित आज भी, विस्थापन के कई दशक बाद पुनर्वास के लिए लड़ रहे हैं।

विवादास्पद SSP को गुजरात की जीवन रेखा माना जाता है और कहा जाता है कि उसे कच्छ के सूखाग्रस्त जिला के लिए बनाया जा रहा है। परन्तु, संशोधन बताता है कि नर्मदा का पानी कच्छ पहुँचने की संभावना ही नहीं है, के ओर नजदीक के भविष्य में तों नहीं ही। इसके बावजूद बांध को विधिसंगत कहने के लिए सूखाग्रस्त कच्छ का उपयोग किया जा रहा है। कच्छ की कुल जमीन में से दो प्रतिशत से भी कम जमीन को इसका फायदा मिलेगा। नहर कच्छ में एक छोटे समुद्रीय क्षेत्र से गुजरनेवाला है, जो की पूरी तरह से सूखाग्रस्त नहीं हैं।

कच्छ के कुछ संभावित आदेशित क्षेत्रो में हरि क्रान्ति अनुभव किया हुआ क्षेत्र होगा। कच्छ के कंडला-गांधीधाम के औद्योगिक विस्तार, जिसमें मुक्त-व्यापार झोन (FTZ) भी शामिल है, आदेशित क्षेत्र में आता है। अतः औद्योगिक निवासियों और अमीर किसानो कि जरुरत पूरी होनेवाली है, न की सूखाग्रस्त इलाकों में बसे लोंगो की। अगर बांध बनता है तो जिले में उपस्थित सामाजिक और आर्थिक विभाजन को ओर गहरा बनाएगा।

सिंचाई के अलावा बांध से कच्छ के गाँव में पीने का पानी भी पहुँचेगा। पीने के पानी की संभावना ने इस परियोजना को गुजरात में लोकप्रिय बनाया है। परन्तु आज तक पीने का पानी पहुँचाने की योजना बहुत स्पष्ट नहीं है। क्योंकि कच्छ नहर के अन्तिम भाग में स्थित है पानी मिलने की संभावना बहुत कम है। दूरी की वजह से (800 km) और इतने बड़े क्षेत्र से पानी ले जाने के तकनिकि अवरोधों की वजह से नहर शायद पूरी तरह से न भी बने। अतः परियोजना के आदेशित क्षेत्र में ज्यादातर पानी दक्षिण और केन्द्रीय गुजरात के संपन्न जिलो में होगा। SSP के पानी के नियतन के सिद्धान्त में न्याय और समानता शामिल नहीं है। अंत में कच्छ जिसका SSP के पानी पर सही मायने में अधिकार है वह दक्षिण और केन्द्रीय क्षेत्रो के किसानो और उद्योगपतिओं के सामने अपना अधिकार खो बैठेगा।

भरुच, खेडा और बड़ौदा जैसे आर्थिक और राजनैतिक ताकत रखने वाले जिलों को SSP का लाभ होगा जो कि SSP के शरुआती क्षेत्र में है। हम ये मान के चलतें हैं कि नहर सिंचाई उपलब्ध होने पर, उकाई बांध की तरह, किसान गन्ने का फसल उगाने लगेगें, जो पानी का बडी मात्र में उपयोग कर लेता है। हकीकत है कि सात बडे गन्ने कारखानों को १९९० के दशक में लायसन्स दिये गए, बावजूद कि उस वक्त गन्ना कहीं भी उगाया नही जा रहा था। इन संपन्न जिलों के औद्योगिक और व्यापारी समुदाय भी इस परियोजना का स्वागत करते है। गुजरात सरकार ने क्षेत्र स्वर्ण गलियारा (Golden Corridor) में आते हुए उद्योगो को बढावा दिया है जो ज्यादातर SSP क्षेत्र में है। इससे ये ही संकेत मिलता है कि बांध औद्योगिक समुदाय और बड़े किसानों के हितो की सेवा करेगा न कि सच्च में पानी की जरुरत रखनेवालो की (उ.त. महिलाएँ, शुष्क भूमि, किसान या रबारी समुदाय)।

निष्कर्ष

उपरोक्त चर्चा सूझाता है कि बड़े बांध विकास के प्रतीक है यह धारणा जरुर शंकास्पद है। न्याय, समानता, धारणीयता और न्यायसंगत आर्थिक विकास के ध्येय को बंडे बांध बनानेवालो ने अब तक आशवस्त नहीं किया है। हमने अवधारणा और आनुभविक स्तरों पर लिंग और बांध को जोड़ने का प्रयत्न किया है। इस रिपोर्ट कि एक मुख्य चिंता विविध सामाजिक समुदायों में लाभ और हानि का वितरण रहा है।

हमारे रिपोर्ट में जिन बांधों की समीक्षा की हे, उनमें से कई ने बिजली उत्पादीत की है और नई सिंचाई की सुविधा का निर्माण किया है, जिससे परियोजना के आदेशित क्षेत्रों में रहनेवाले महिलाओं और पुरुषों को संभावित लाभ हुआ है। परंतु हमारी जांच ने ये भी स्पष्ट किया है कि ज्यादातर बांधो कि वजह से समस्याएँ भी उभरी हैं। इसका कारण है कि टेक्नोलॉजी को ज्यादातर निष्पक्ष और सामाजिक - सांस्कृतिक व्यवस्था से परे माना जाता हे। हम मानते है कि बडे बांध परियोजना सामाजिक रीति - रिवाज और संबंधो में ही स्थित हैं और उनका विश्लेषण उसी तरह से किया जाना चाहिए। अतः लैंगिक या सत्ता के ढांचो के अन्तर्गत हम पाते है कि कई परियोजनाएँ दूषित है। बडे बांध व्यापक राजनैतिक आर्थिक व्यवस्था के साथ जुडे है। बांध-आधारित विकास से आदेश-और-नियंत्रण प्रकार की टेक्नोलॉजी उभरती हैं जो असमान है और ताकतवर हिस्सों के हितों के लिए काम करती है।

और अधिक, बडे बांधो की योजना, अमलीकरण, मूल्यांकन और अनुसरण ने लिंग को नजरअंदाज किया है। जब कभी परियोजनाओ के लाभ परियोजना-प्रभावित परिवारों तक पहुँचे है, अक्सर पुरुष और उनके हित केन्द्र में रहे हैं। प्रचलित लैंगिक पूर्वग्रहों ने महिला को लाभों से वंचित रखा है। ये नीचे दिए गये कारणों से हो सकता है :

- नदी बेसीन Management की व्यवस्था पानी के स्रोत की विकास और जलविद्युत विकास में लैंगिक विचार को वर्जित करना। सामाजिक सांस्कृतिक और सामाजिक - आर्थिक विचार से ज्यादा तकनिकी की मुद्दो पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

- समानता बडे बांधो का स्पष्ट ध्येय नहीं रहा है। बांधो के सामाजिक संबंधो पर असर और उनका व्यापक राजनैतिक अर्थ व्यवस्था के प्रश्नों के साथ जोड का विश्लेषण किये बगैर ये गलत मान्यता रही है कि किसी भी समुदाय या समाज में लाभों का वितरण समान रहा हैं।

- बडे बांध जैसे हस्तक्षेप लिंग के प्रति निष्पक्ष या बिन राजनैतिक नहीं होते। प्रचलित सामाजिक और सत्ता संबंधो से ही वे उभरते हैं या उसमें और पहलूओं को जोडते है। इनको जब तक ध्यान में नहीं लिया जाता, स्रोत के न्यायी और समान वितरण पर ध्यान नहीं केन्द्रित होगा।

- बडे बांध की नीति और योजनाएँ ज्यादातर प्राकृतिक स्रोत और न्याय और समानता के स्थानीय मूल्यों को नियंत्रित करनेवाली स्थानीय संस्थाकीय व्यवस्थाओं के प्रति अजागरुक होती है। अतः कई. बार अनौपचारिक व्यवस्थाओं में जमीन और पानी पर महिलाओं के अधिकार का क्षय होता हे।

- लाभ हानि विश्लेषण में अगोचर कारक की गिनती नहीं होती। महिलाओं का श्रम और सामाजिक व्यवस्था में भूमिका अक्सर दिखाई नहीं देते, अतः लाभ-हानिं के माप-दंड में लैंगिक पूर्वग्रहों का प्रतिबिम्ब है। इस माप-दंड में सामाजिक हिस्से नहीं होते क्योंकि ताकतवर हिस्सों के आर्थिक हितों को कम ताकतवर हिस्सों के बिन-आर्थिक हिस्सों से ज्यादा प्राथमिकता दी जाती है। ये कदापि संभव नहीं की छोटे - पर ताकतवर समुदाय के हितों के बदलें बहुमत गरीब या भूमिहीन किसानों को प्राथमिकता दी जाय।

- बडे बांधो से संबंधित सारी प्रक्रियाओं में महिलाओं की सहभागिता बहुत कम रही है।

हम मानतें है कि ये दोष नीति और रिवाज में लिंग के प्रति अन्धापन की वजह से हुआ है। विश्व बैंक की हाल ही में हुए बडे बांधो के मूल्यांकन में भी इस बात को माना गया है। बैंक के OED ये मानता है कि महिलाओं की जरुरतों को बिलकुल नजरअन्दाज किया गया है (OED, 1998e 20)। टोगो में नंगबेटो परियोजना के संदर्भ में OED रिपोर्ट यह मानती

है कि "इस परियोजना में लिंग-संबंधित मुद्दों के प्रति कोई जानकारी नहीं दिखती" (OED 1998b, 17)। ये प्रभावित व्यक्तियों और समुदायों के बारे में गलत पूर्वानुमान की वजह से होता है। समुदाय का लोंगो को निशाना बनाते हुए हस्तक्षेप ने ज्यादातर उनको लिंगविहीन एकम या हस्तियों के रूप में देखकर महिलाओं को जानकर या अन्जाने में नजरअंदाज किया है। कई बार एसे हस्तक्षेप ने लैंगिक असमानता को बढावा दिया है।

बडे बांध के हानिकारक असर के संदर्भ में विस्थापन और पुनर्वास की प्रक्रियाओं से महिलाओं को बहुत स्पष्ट रूप से हानि हुई है। महिलाएँ और आदिवासी समुदायों को कई तरह से हानि पहूँची है। इसमे शामिल है :

- जमीन, पानी और सार्वजनिक संपत्ति तक घटती हुई पहुँच और नियंत्रण। नीति बनाने वालों ने अक्सर जंगल-आधारित आर्थिक व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका को नजरअंदाज किया है। अतः नये वातावरण में उनकी आर्थिक और सामाजिक स्वायत्तता उनसे छीनी जाती हे।

- मुआवजा जैसे आर्थिक मापदंड पर ज्यादा झुकाव और पानी, घास चारा और अन्न को नजरअंदाज करना। इससे महिलाओं का बोझ बढ़ता है और पूरे परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण पर असर होता है।

- परिवार और समुदाय में भूमिका इन स्रोत के इस्तमाल और पहुँच के इर्द गिर्द होतें हैं। इन स्रोत के संबंध में नकारात्मक परिवर्तन से परिवार और समुदाय में लैगिक संबंधो पर असर होता है।

- लैंगिक संबंधो मे परिवर्तन जो हमेशा महिलाओं के लिए सकारात्मक साबित नहीं हुए। बाजार, अर्थ व्यवस्था ओर लैंगिक पूर्वग्रह महिलाओं के हितों के खिलाफ काम करतें है। उ.त. जब समुदाय पुनर्वास स्थलो में मजदूरी करने पर मजबूर

होता है, तब महिलाओं को जरुर हानि होती है। परिवर्तित सामाजिक वातावरण के कारण पारिवारिक तनाव बढा है।

- समुदाय के ढांचो के विभाजन से विस्थापित समुदाय के लिए सामाजिक अकेलापन पैदा होता है। ऐसी परिस्थितियों मे महिलाओं पर अंदरुनी और बाहरी तनाव बढ़ने की संभावना होती है।

- बांध नीति महिलाओं को स्वायत्त हस्तियों के रूप में देखने में असफल रही हैं। नीति ने महिलाओं के जीवन को आकार देनेवाले उन सामाजिक और सांस्कृतिक पहलूओं को नजरअंदाज किया है।

- समुदायो को पुनःस्थपित करने के लिए अधिकारी कई बार बल का उपयोग करतें है; इस की वजह से बड़े बांध मानव अधिकारों का उल्लंघन करते है। कुछ समुदाय पर इसका असर हुआ हे। सार्वजनिक क्षेत्र तक महिलाओं की पहुँच कम होने से मानव अधिकार के उल्लंघन उन्हें और भी खामोश कर देती हैं। नीति और प्रथा में समानता और लैंगिक न्याय कें मुद्दों को महत्त्व देने में बांध बनानेवालों कि तरह से स्पष्ट निष्ठा नहीं हैं। बड़े बांध विकास और प्रगति तब ही ला सकतें है जब नीति और प्रथा में बडे पैमाने पर बदलाव लाए जाएँगें। इसके लिए राजनैतिक इच्छाशक्ति कि जरुरत है। बांध-प्रभावित गरीब समुदाय के पक्ष में परिवर्तन सचेत नीति के तहत हो सकता है।

नीति बनानेवाले, योजनाकार, प्रभावित समुदाय और सामाजिक आंदोलन के राष्ट्रीय और आन्तरराष्ट्रीय गठबंधन से बांध बनानेवालों पर दबाव डाला जा सकता है। यहाँ भी ये तभी संभव है जब एक सचेत रणनीति हो जिसमें समानता और लैंगिक न्याय के ध्येय केन्द्र में रहें। परन्तु महिलाएँ ओर निर्बल समुदाय के उपस्थित विशिष्टता और स्रोत की कमी की वजह से सावधान और न्यायी नीति से ही इन समुदायों का एसे गठबंधन में प्रतिनिधित्व रहेगा। एसी रणनीति को बनाने का मतबल लैंगिक-न्याय और समानता के उद्देश्यों को मान्यता देनेवाले पानी और बिजली उत्पादन के वैकल्पिक तरीकों पर और गंभीर सोच भी हो सकती है।

बड़े बांध के संदर्भ में समानता के सवाल उठाना आसान नहीं होगा, क्योंकि एसा करने के लिए विविध समुदायों में स्रोतो का पुनःवितरण करना पडेगा (शहर से गाँव, पुरुष से महिला, उच्च वर्ग से निचले वर्ग)। समानता को लागु करने के लिए पानी और बिजली की बढ़ती मांग को चुनौती देनी पड़ेगी, इसके लिए स्रोत का समान वितरण और धारणीय जीवन प्रणाली अनिवार्य होगा।

पिछले कुछ दशक में शास्त्रकारों, कार्यकर्ताओं ओर बिन-सरकारी संगठनो द्वारा काफी प्रभावशाली काम हुआ है। जिसये बड़े बांध के सामाजिक और आर्थिक दूषणों को सामने लाया है। बड़े बांध के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए जरुरी है नीति, कार्यक्रम और अमलीकरण में एसे अभ्यास को आत्मसात करना। बांध बनानेवालों को प्रगति, समृद्धि और सब की भलाई जैसी अवधारणाओं पर और एक नजर डालनी पड़ेगी। वितरण और समानता के ध्येय विकास के संदर्भ में अब तेजी से स्वीकार लिए जा रहे हैं। दुनियाभर में लोग एसे विकास प्रक्रियाओं के तथाकथित लाभ पर अपने अधिकार लेने के लिए उठ रहे है। एसी परिस्थिति में बांध बनानेवाले इन सवालों को नजरअंदाज नहीं कर सकते। लाभों का न्यायी और समान वितरण न होने से बड़े बांध का पक्ष की उपयोगीता पर संदेह होता है। जब कुछ समुदायों को बांध के लिए बडी कीमत चुकानी पडती है, तब बड़े बांध लोंगों के मूलभूत और जीवन के लिए आवश्यक सुविधाओं के अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

कुछ सुझाव

नीचे दी गई सलाह बड़े बांधो के लैंगिक प्रभाव के हमारे विश्लेषण पर आधारित है। लैंगिक न्याय और समानता पर समझौता लिंग की उपस्थित अदृश्यता को बल देती है और लैंगिक समानता को बढ़ाने का प्रयास करते हुए कई आन्तरराष्ट्रीय प्रक्रियाओं के खिलाफ होगा। हमारी सलाह है कि बड़े बांध की चर्चा में लिंग संबंधित सवालों को शामिल करना चाहिए, इसके लिए फिर चाहे संकुचित आर्थिक ढाँचो को तोडना पडे।

- बंडे बांधो की योजना, अमलीकरण और अनुश्रवण के लिए लिंग-जागृत और सहानुभूति रखने वाले नीतियों की जरुरत है। इन नीतियों की पहुँच सारे परियोजना-प्रभावित क्षेत्रों में होनी चाहिए, न की सिर्फ catchment क्षेत्रों तक। परियोजना क्षेत्र में लैंगिक समानता के प्रति बांध बनाने वालों की निष्ठा होनी चाहिए।

- 'परियोजना-प्रभावित व्यक्ति' की धारणा में के लिंग को शामिल करना चाहिए। पुनर्वास के संदर्भ में इसका मतलब है कि परिवारों को जो मुआवजा दिया जाता है उसमें महिला और पुरुष, दोनों को लाभ होना चाहिए। अकेली और विधवा स्त्रियों को व्यक्तिगत मुआवजा मिलना चाहिए। विकास की प्रक्रिया में मानव अधिकारो कां उल्लंघन प्रगति के दीर्ध-अविधि उद्देश्यों के लिए हानिकारक हैं। बड़े बांध बल और जबरदस्ती से नहीं बनाये जा सकते। प्रभावित जनसंख्या के मानव अधिकारो के अनुश्रवण और सुरक्षा के लिए संस्था बनाना जरुरी है।

- प्रभावित समुदाय के साथ शुरु किए गए परामर्श में महिला समूहों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अगर स्थानीय पुरुष नेताओं द्वारा महिला समूह के प्रति विरोध प्रगट किया जाता है, तो लैंगिक पूर्वग्रहो और रुढ़िवादी विचारों का सामना करने के लिए अधिक समय ओर प्रयत्न डाला जाना चाहिए।

- नीति बनाने में महिलाओं की विविध भूमिकाओं को ध्यान में रखना जरुरी है; परामर्श की प्रक्रिया में इन्हें शामिल करने की गुंजाईश होनी चाहिए। सभाओ में महिलाओ के प्रतिनिधित्व के सिर्फ नाम के वास्ते नहीं होना चाहिए। महिला सहभागिता के लिए सारे आवश्यक कदम लिए जाने चाहिए। बांध संबंधित नीति महिलाओं के सार्वजनिक जगहों के उपयोग के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। इस संदर्भ में उनकी प्रत्यक्ष जरुरतों को शामिल करने की गुंजाईश होनी चाहिए। अगर नीति लिंग के प्रति सहानुभूति रखती है, तो महिलाएँ खूलकर अपने विचार राज्य, समुदाय या एजन्सी की तरफ से बिना किसी दबाव के भय से मुक्त होकर प्रगट कर सकती है।

- लैंगिक न्याय के प्रति निष्ठा होने से महिलाओं के विकास की प्रक्रिया में जरुरत से ज्यादा कीमत नहीं देनी पडेगी। अतः प्रभावित क्षेत्रो में उपस्थित लैंगिक भूमिकाएँ, संबंध और पूर्वग्रहों कि जानकारी जरुरी है। स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण के संदर्भ में लैंगिक असमानताओं को कम किया जाना चाहिए। बांध की वजह से उपस्थित लैंगिक असमानता मै बढ़ावा नहीं होना चाहिए। परियोजना के मूल्यांकन प्रक्रिया को परिवार और समुदाय में श्रम विभाजन, के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। श्रम का बटवारा जैसी प्रथाओं पर बांध के लैंगिक असर पर ध्यान देना चाहिए। बंधुता, सहाय व्यवस्थाओं के विभाजन के परिणाम पर भी ध्यान देना चाहिए।

- बांध नीति के आयोजन और अमलीकरण में लिंग के एकीकरण के लिए लिंग को मुख्य धारा में लाना जरुरी है। इसके लिए लिंग संबंधित प्रत्यक्ष संकेतक (जो समाज के हर स्तर पर महिला और पुरुष की विविध भूमिकाओं का हिसाब देंगे) जरुरी है।

- परियोजना के प्रभावित क्षेत्रों मे विस्तृत लिंग प्रत्यक्ष माहिती उपलब्ध करना जरुरी है। माहिती का अभाव बहतर नीति और हस्तक्षेप को भी नकार सकती है। बांध के असर के मूल्यांकन में लिंग सबसे अधिक उपेक्षित क्षेत्रों में से एक है, इस अभाव को निकालने के लिए लंबी अवधि संशोधन की जरुरत है जिससे बांध और लिंग का रिश्ता और स्पष्ट हो सकता

है। महिलाओं के अधिकार, भूमिका और जिम्मेदारियों को स्पष्ट करते हुए संशोधन की उपलब्धि ये है कि बांध के संभवित लाभ का पूर्ण तरह से उपयोग हो सकता है। इस तरह हाल में जो प्रभावित महिलाओं द्वारा कीमत चूकाई जा रही है उसे अगर बांध नीति ओर अमलीकरण लिंग-प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित हो।

- नये बांध के मामले में एसे संशोधन जरुरी है जो बांध बनने के पहले किए जातें हैं। उनको फिर योजना की प्रक्रिया में जोडा जाना चाहिए। पारी पाँसू (pari passu) लिंग-संशोधन इस उद्देश्य के खिलाफ होगा, इसीलिए उन्हें बंद कर देना चाहिए।

- बड़े बांध के आयोजन और अमलीकरण प्रक्रिया में समानता एक स्पष्ट ध्येय होना चाहिए। लाभ-हानि को सारे समुदायो (जिस में शामिल हैं महिला / पुरुष, शहरी-ग्रामीण, नागरिक, ताकतवर और निर्बल) के बीच समान वितरण होना चाहिए। परियोजना का ध्येय असमानता को कम करने का होना चाहिए - इसके लिए सम्पन्न समुदायों को बडी कीमत चुकानी चाहिए और निर्बल वर्ग को ज्यादा फायदा होना चाहिए।

- समानता के ध्येय का पालन करने के लिए एजन्सीयों को निर्बल वर्ग के तरफ झुकाव रखना पडेगा। उ.त. जमीन पर अधिकार को बढ़ावा देने से और गरीबों की जमीन पर ध्यान देने से सिंचाई व्यवस्थाओं में उपस्थित असमानताएँ दूर कि जा सकती हैं। इस से गरीब जनसंख्या की अन्न सुरक्षा बढ़ सकती है। सिंचाई सुविधा बनाते समय जमीन सुधार लागु करना या भूमिहीन को पानी पर अधिकार देना - दूसरे हस्तक्षेप हो सकते है।

- लिंग सशक्तिकरण के ध्येय नीति में शामिल होना चाहिए। पानी और जमीन पर महिलाओं के अधिकार को केन्द्र में रखना चाहिए। जहाँ उपस्थित राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय प्रबंध महिलाओं की स्वायत्ता और नियंत्रण के खिलाफ है, इन खामियों को दूर करने के लिए उन्हें बदलना चाहिए।

- परियोजना के योजको को समानता के स्थानीय अवधारणाओं के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। अक्सर अनौपचारिक कानून और स्रोत तक पहुँच और नियंत्रण के प्रति स्थानीय समाज के बारे में जानकारी न होने की वजह महिलाओं या आदिवासी समुदायो के उपस्थित अधिकारों खासकर के सार्वजनिक स्रोत को दूर्बल बना सकती है।

❑

References

Agarwal, B. 1988. "Neither Sustenance nor Sustainability: Agricultural Strategies, Ecological Degradation and Indian Women in Poverty," in Agarwal, B (ed.), Structures of Patriarchy. New Delhi: Kali for Women.

Agarwal, B. 1996. A Field of One's Own. Gender and Land Rights in South Asia. Cambridge: Cambridge University Press.

Anane, M. 1999. Gender and dams: A case study of the Akosombo dam in Ghana. Submission to World Commission on Dams.

Anon. n.d. Women's Response to Hydro Quebec and Industrialization in Nitassinan. Mimeo.

Baden, S. and A. M. Goetz, 1996. 'Who needs (sex) when you can have gender?' Feminist Visions of Development. London. Routledge.19-38.

Baksh-Soodeen.R, 1998. 'Issues of Difference in Contemporary Caribbean Feminism. Feminist Review. Vol. 59: 72-85.

Berry, S. 1987. "Property Rights and Rural Resource Management: The Case of Tree Crops in West Africa", Working Papers No. 122, Boston: Boston University, African Studies Centre.

Bahrin, T. S. n.d. 'Beyond Resettlement: a comparative study of the impacts of resettlement programs in South East Asia'. South East Asian Studies Program. No.2: 63-65.

Bhatia, B. 1997. 'Forced Evictions in the Narmada Valley, ' in Dreze et al (ed.), The Dam and the Nation. Delhi: Oxford University Press. 267-321.

Boserup, E. 1970. Women's Role in Economic Development. New York: St Martins Press.

Carney, J. 1988. "Struggle over Land and Crops in an Irrigated Rice Scheme in the Gambia," in Agriculture, Women and Land: The African Experience, Boulder, Colorado: Westview, 59-78.

Centre for Social Studies. 1997. Resettlement and Rehabilitation in Gujarat in Dreze et al (ed.), The Dam and the Nation. Delhi: Oxford University Press. 215-235.

Cernea, M. Forthcoming. Why economic analysis is essential to resettlement? A sociologists view. The economics of involuntary resettlement: Questions and challenges. Washington D.C. World Bank

Cernea, M. and S. Guggenheim. (eds). 1993. Anthropological Approaches to Resettlement. Policy, Practice and Theory. Boulder: Westview.

Chambers, R. 1978. "Project Selection for Poverty-Focused Rural Development: Simple is Optimal," World Development, Vol. 6: 3: 209-19.

Chambers, R. 1988. Managing Canal Irrigation: Practical Analysis from South Asia. New Delhi: Oxford and IBH.

Colson, E. 1999. Engendering those uprooted by 'Development, in Indra, D. (ed.). Engendering Forced Migration: Theory and Practice. Oxford: Refugee Studies Program. 23-39.

The Cornerhouse, 1998, "Whose Voice is Speaking? How Opinion Polling and Cost-Benefit Analysis Synthesize New "Publics," Briefing 7. Dorset: The Cornerhouse.

Department for International Development. 1999. "Briefing Sheet: Gender Mainstreaming Information Resource." Mimeo. London: Social Development Division (DFID).

Dharmadhikary, S. 1998. "Large Dams of Gujarat: Failed Promises and Trauma of Displacement." Submission to the World Commission on Dams.

Dreze, J, M. Samson and S. Singh (eds). 1997. The Dam and the Nation. Delhi: Oxford University Press

Elson, D. 1998. 'Talking to the boys: gender and economic growth models' in Jackson, C. and Pearson R. (eds.) Feminist Visions of Development: Gender Analysis and Policy. Routledge: London,

Elson, D. 1997. 'Micro, meso, macro: gender and economic analysis in the context of policy reform' in Bakker (ed.), The Strategic Silence: Gender and economic policy. London: Zed Books, 33-45.

Hakim, R. 1997. 'Resettlement and Rehabilitation in the context of 'Vasava' culture in Dreze et al (ed.), Dreze et al (ed.), The Dam and the Nation. Delhi: Oxford University Press., 136-167.

Indra, D. 1999. 'Not a room of one's own' in Indra (ed.), Engendering Forced Migration: Theory and Practice. Oxford: Refuge Studies Program. 1-21.

Jackson, C and R Pearson. (eds.). 1998. Feminist Visions of Development: Gender Analysis and Policy. Routledge: London,

Kabeer, N. 1994. Reversed Realities. Gender Hierarchies in Development Thought. London: Verso.

Kishwar, M. 1988. 'Nature of Women's Mobilisation in Rural India: An Exploratory Essay.' Economic and Political Weekly. 23 (52/53): 2754-2763.

Koenig, D. 1995. "Women and Resettlement," in Gallin, R, A. Ferguson and J. Harper (eds.). The Women and International Development Annual, Volume 4. Boulder, Colorado: Westview, 21-51.

Koenig, S. 1999. "Embracing Women as Full Owners of Human Rights," in Haxton, E and C. Olsson (eds.) Gender Focus on the WTO. Global Publications Foundation: Uppsala, 15-40.

McCully, P. 1996. Silenced Rivers. The Ecology and Politics of Large Dams. London: Zed.

McDowell, C. 1997. Understanding Impoverishment. The Consequences of Development-Induced-Displacement. Oxford: Berghahn.

Mehta, L. Forthcoming. "Women Facing Submergence: Displacement and Resistance in the Narmada," in Damadoran Vinita and Maya Unnithan (eds). Identities, Nation, Global Culture. Sage: New Delhi.

Mehta, L. 1997. Social Differences and Water Resources Management: Insights from Kutch, India. IDS Bulletin. Vol 28: 4: 70-90.

Mehta, L. 1998. Contexts of Scarcity: The Political Ecology of Water in Kutch, India. Unpublished doctoral thesis, Institute of Development Studies, University of Sussex.

Mehra, R. and S. Esim. 1997. "What Gender Analysis can contribute to Irrigation Research and Practice in Developing Countries: Some Issues", in Merrey, D. and S. Baviskar (eds.) Gender Analysis and Reform of Irrigation Management: Concepts, Cases, and Gaps in Knowledge. Colombo: International Water Management Institute.

Meizen-Dick, R.S., L. Brown, H. Sims-Feldstein and A. Quisumbing, 1997. "Gender, Property Rights, and Natural Resources," World Development. Vol. 25, No. 8: 1303-1315.

Merrey, D. and S. Baviskar (eds.) Gender Analysis and Reform of Irrigation Management: Concepts, Cases, and Gaps in Knowledge. Colombo: International Water Management Institute.

Morse et al. 1992. Sardar Sarovar: Report of the Independent Review. Ottawa: Resources Futures International (RFI) Inc.

Operations Evaluation Department. 1998a. Recent Experiences with involuntary resettlement: Brazil-Itaparica. No. 17544. Washington D.C. World Bank.

Operations Evaluation Department. 1998b. Recent Experiences withinvoluntary resettlement: Togo-Nangbeto. No. 17543. Washington D.C. World Bank.

Operations Evaluation Department. 1998c. Recent Experiences with involuntary resettlement: Thailand-Pak Mun. No. 17541. Washington D.C. World Bank.

Operations Evaluation Department. 1998d. Recent Experiences withinvoluntary resettlement: Indonesia-Kedung Ombo. No. 17540. Washington D.C. World Bank.

Operations Evaluation Department. 1998e. Recent Experiences withinvoluntary resettlement: India-Upper Krishna II. No. 17542.
Washington D.C. World Bank.

Operations Evaluation Department. 1998f. Recent Experiences withinvoluntary resettlement: China-Shuikou (and Yantan). No. 17539. Washington D.C. World Bank.

Operations Evaluation Department. 1998g. Recent Experiences with involuntary resettlement: Overview. No. 17538. Washington D.C. World Bank.

Parasuraman, S. 1993. 'Impact of Displacement by Development Projects on women in India. Working Paper Series No. 159. The Hague. Institute of Social Studies.

Parasuraman, S. 1997. 'The Anti-Dam movement and Rehabilitation policy', in Dreze et al (ed.), The Dam and the Nation. Delhi. Oxford University Press. 26-65.

Scudder, T. 1995. 'Resettlement.' In Biswas, A. (ed). Handbook of Water Resources and Environment. .McGraw Hill.

Sen, A.1990, "Gender and Co-operative Conflicts" in Tiner, I. (ed). Persistent Inequalities. Oxford: Oxford University Press.

Singh, S. 1999. Contracting Out Solutions: Crisis in Agriculture and Contract Farming in the Indian Punjab. Mimeo.

Shiva, V. 1989. Staying Alive. Women, Ecology and Development. London: Zed Books.

Srinivasan, B. 1997. In Defense of the Future. Mumbai. Vikas Adhyayan Kendra.

Srinivasan, B. 1999a. Draft Report on Status of Women in Gujarat. Mimeo.

Srinivasan, B. 1999b. Trespassers will be Prosecuted. Mumbai. Vikas Adhyayan Kendra.

Tata Institute of Social Studies (TISS). 1997. 'Experiences with Resettlement and Rehabilitation in Maharastra' in Dreze et al (ed.), in The Dam and the Nation. Delhi. Oxford University Press. 184-214.

Thukral, E. 1992. Big Dams, Displaced Peoples: Rivers of sorrow, Rivers of joy. Delhi. Sage Publications.

Thukral, E. 1996. 'Development, Displacement and Rehabilitation: Locating Gender'. Economic and Political Weekly. Vol. 31. no.24: 1500-1503.

Vaidyanathan, A. 1994. Second India Studies Revisited. Food, Agriculture and Water. Madras: Madras Institute of Development Studies.

Van Koppen, B. n.d. Gendered Water and Land Rights in Construction: Rice Valley Improvement in Burkina Faso. Mimeo.

Van Koppen, B. 1999. "Sharing the Last Drop: Water Scarcity, Irrigation and Gendered Poverty Eradication," Gatekeeper Series no. 85, London: International Institute for Environment and Development.

Watershed. 1998. 'In a class by itself': World Bank report on Pak Mun. Watershed. Vol.4. no.2, 47-51.

Zwarteveen, M. 1997. "Water: From Basic Need to Commodity: A Discussion on Gender and Water Rights in the Context of Irrigation," in World Development. Vol. 3, No. 8: 1335-1349.

मंथन अध्ययन केन्द्र
बड़वानी

BIG DAM